प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९४७

मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
इन्द्रप्रस्थ प्रेस
क्वीन्स रोड, देहली

अपनी ओर से

इस पुस्तक में टालस्टाय के जिन निबन्धों को स्थान दिया गया हैं, उन्हें अनुवादित और संकलित करने का काम आज से लगभग पांच-छः वर्ष पहले ही पूरा कर लिया गया था। किन्तु युद्धकालीन असाधारण परिस्थितियों के कारण उन्हें इस से पहले पाठकों के हाथों में नहीं रक्खा जा सका। टालस्टाय के ये निबन्ध पहली बार हिन्दी भाषा-भाषी संसार के सामने रखे जा रहे हैं। बहुत सी रचनायें ऐसी होती हैं जिनका मूल्य समय गुजर जाने के साथ नष्ट हो जाता है। किन्तु टालस्टाय की रचनाओं पर यह बात लागू नहीं होती। जब तक दुनिया में रहने वाले सब लोग अच्छे भले नहीं बन जाते, दूसरे शब्दों में इस पृथ्वी पर स्वर्ग राज्य स्थापित नहीं हो जाता, तब तक टालस्टाय की रचनाओं का महत्व और मूल्य नष्ट नहीं हो सकता। टालस्टाय ने मानवजाति को जो जीवनदायी सन्देश दिया है, युग-युगान्तर तक उसकी आवश्यकता रहेगी। आज तो जब कि मनुष्य तरह-तरह की दुर्बलताओं और कमजोरियों का शिकार बना हुआ है, टालस्टाय के सन्देश पर मनन और अमल किये जाने की और भी अधिक आवश्यकता है। इन निबन्धों को पाठकों के हाथों में अन्तिम रूप से रखने के पहले मैंने उन्हे एक बार फिर शुरू से लगाकर अखीर तक पढ़ा है और मैंने ऐसा महसूस किया है, मानों किसी ने सोये हुए अन्तःकरण को झकझोर दिया हो। मेरा विश्वास है कि जो भी व्यक्ति इन निबन्धों को पढ़ेगा वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उसकी आत्मा में एक नई हलचल मच जायगी और वह उत्तम जीवन की ओर आगे बढ़ने के लिए प्रेरित होगा। मेरे लिए तो

यह असीम आत्म-संतोष का विषय है कि टालस्टाय के कल्याणकारी संदेश को इस पुस्तक के रूप में हिंदी जगत के सामने रखने के लिए एक निमित्त बनने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

प्रत्येक मनुष्य का यह लक्ष्य होना चाहिए कि उसका जीवन उत्तम बने। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसे निरन्तर जागरूक होकर साधना करनी होगी। टालस्टाय ने हमको बताया है कि हम किस प्रकार यह साधना कर सकते हैं। पहले निबन्ध में उन्होंने आत्म-संयम पर बल दिया है। आधुनिक सभ्यता के प्रशंसक यह मानते हैं कि मनुष्य की आवश्यकतायें जितनी ही अधिक बढ़ी हुई होंगी, और भोग विलास के जितने ही अधिक साधन उसे उपलब्ध होंगे, उतना ही वह उन्नत और सुखी होगा। टालस्टाय का ठीक इसके विपरीत मत है। वह उत्तम जीवन के लिए आत्म-संयम को आवश्यक समझते हैं। उनकी शिक्षा हिन्दू धर्म की शिक्षा से बिल्कुल मिलती है। हिन्दू धर्म-शास्त्रों में भी आत्म-संयम और अपरिग्रह की महत्ता बखानी गई है। टालस्टाय ने उत्तम जीवन की एक कसौटी बता दी है। वह यह कि हम खुद को जितना ही कम प्रेम करेंगे, अपने लिए कम चिन्ता करेंगे और अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के श्रम का कम उपयोग करेंगे तथा इसके बजाय दूसरों से जितना ही अधिक प्रेम करेंगे, दूसरों की जितनी ही अधिक चिन्ता करेंगे, उनके लिए परिश्रम करेंगे, उतना ही हमारा जीवन उत्तम होगा। दूसरे शब्दों में मनुष्य जितना ही अधिक दूसरों को देता है और दूसरों से जितना ही कम अपने लिए चाहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ होता है।

आज-कल मानव जाति की सेवा करने की कल्पना बड़ी सस्ती हो रही है। मनुष्य बाप दादों से विरासत में मिली अथवा खुद के द्वारा उचित अनुचित तरीके से कमाई हुई सम्पत्ति के बल पर सुबह से शाम

तक दूसरों की मेहनत पर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, प्रसंगापात्त सभा-सम्मेलनों और यार दोस्तों के बीच साहित्य, कला और विज्ञान का चर्चा कर लेते हैं और कभी-कभी श्रमजीवियों की दुर्दशा पर कोई भावनात्मक निबन्ध अथवा कहानी लिख डालते हैं या समाजवाद के सिद्धान्तों पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान झाड़ देते हैं और समझ बैठते हैं कि वे मानव जाति की बड़ी भारी सेवा कर रहे हैं। किन्तु टालस्टाय का कहना है कि जो लोग ऐसा करते हैं वे अपने को धोखा देते हैं। जब तक मनुष्य अनावश्यक वस्तुओं का उपयोग करता रहेगा, तब तक वह अपने से कम साधन वाले मनुष्यों के दुःख और मुसीबत में वृद्धि करता रहेगा। अपनी आवश्यकताओं को घटाये बिना, अपने विकारों को वश में किये बिना मनुष्य मानव जाति की सेवा नहीं कर सकता।

आत्मसंयम की पहली सीढ़ी यह है कि मनुष्य अपने स्वाद पर काबू प्राप्त करे। मनुष्य स्वाद के पीछे जितना पागल रहता है, उतना शायद ही और किसी बात के लिए रहता होगा। वह जीभ की भूख को तृप्त करने के लिए प्रत्येक सम्भव तरीके की तलाश में रहता है। अनेक मनुष्य हैं जो मांसाहार करके बड़े प्रसन्न होते हैं। किंतु टालस्टाय ने एक रूसी कसाईखाने का आंखों देखा जो वर्णन किया है, उसको पढ़कर क्रूरता, बीभत्सता और अमानुषिकता का एक सजीव चित्र हमारे सामने खड़ा हो जाता है। टालस्टाय कहते हैं कि मांसाहार पशु-वृत्तियों को बढ़ाता है, वासनायें जागृत करता है और व्यभिचार और शराबखोरी का प्रसार करता है। अतः जो मनुष्य उत्तम जीवन बिताने की इच्छा रखते हों, इन्हें उसका परित्याग करना ही चाहिए।

दूसरे निबन्ध में टालस्टाय ने नशाखोरी के कारणों पर प्रकाश डाला है। उनका यह कथन एकदम मौलिक है कि मनुष्य अपने

अन्तःकरण के आदेशों की उपेक्षा करने के लिए विविध नशे करता है। सभी किस्म के नशों से जिसमें तम्बाकू पीना भी शामिल है, चाहे वे अधिक मात्रा में किये जायं अथवा कम में, आत्मा कुण्ठित हो जाती है और मनुष्य इस आत्मा विस्मृति की अवस्था में न करने योग्य काम करता रहता है। तम्बाकू पीने का रिवाज तो आज समाज में आश्चर्यजनक रीति से प्रसार पा रहा है। इस दुर्गुण को सभ्यता की निशानी समझ लिया गया है। किन्तु टालस्टाय ने अपनी दलीलों से यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्यों के लिए अन्य नशों की तुलना में तम्बाकू पीना कम भयंकर और हानिकर नहीं है।

अन्तिम निबन्ध में टालस्टाय ने रोटी के लिए श्रम करने के स्वयं सिद्ध और महत्वपूर्ण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनुष्य को जीवित रहने के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन वस्तुओं के उत्पादन में प्रत्येक मनुष्य को सबसे पहले हाथ बटाना चाहिए। स्वयं शारीरिक श्रम किये बिना जो मनुष्य दूसरों के श्रम से बनी हुई वस्तुओं का उपभोग करता है, वह चोरी करता है। जो दूसरों से प्रेम करने की अथवा मानव जाति की सेवा करने की दुहाई देता है, वह ऐसा नहीं कर सकता। श्रम विभाजन के नाम पर जो इस प्रथमिक कर्त्तव्य की उपेक्षा करते हैं, वे मिथ्या भ्रम-जाल उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह साहित्य-प्रेमी हो, वैज्ञानिक हो, न्यायाधीश हो, शिक्षक हो अथवा और कुछ हो, उत्पादक शारीरिक श्रम अवश्य करना चाहिए। इसी लिए टालस्टाय ने भाग्यवान लोगों से अपील की है कि वे जरा ऊपर से नीचे उतर आयें और जो लोग भूखों के लिए भोजन पैदा करते और नंगों के लिए वस्त्र तैयार करते हैं, उनके साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर खड़े हो जायें। आज महात्मा गांधी यज्ञ के रूप में चर्खा कताई पर जो बल दे रहे हैं, उसका यही रहस्य है।

: दो शब्द :

टालस्टाय के निबन्धों के बारे में अधिक लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। वह हमारे हृदय और मस्तिष्क दोनों को अपील करते हैं। उनके पास दलीलों का अगाध भण्डार है और उनकी युक्ति-संगत दलीलें मस्तिष्क की राह सीधी हृदय में बैठ जाती हैं। श्री राजगोपालाचार्य ने कहा है कि यदि किसी को हिन्दू धर्म को उसके सम्पूर्ण वास्तविक अर्थों में समझना हो तो उसे परमहंस राम-कृष्ण के उद्‌गारों का संकलन पढ़ना चाहिए। यदि कोई मुझसे यह पूछे कि एक इंसान को अच्छा इंसान बनाने के लिए कौनसी पुस्तकें पढ़नी चाहियें तो मैं निस्संकोच कहूंगा कि उसे टालस्टाय की रचनायें पढ़नी चाहियें। आशा है यह पुस्तक सोते हुए मनुष्य को जगायेगी और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करेगी।

तिलक पुण्यतिथि
१ अगस्त १९४७
नई दिल्ली

—शोभालाल गुप्त

विषय सूची

: १ :

आत्म-संयम

[१]

यदि एक आदमी काम करने का बहाना नहीं कर रहा है, बल्कि हाथ में लिये हुए काम को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील है, तो उसके प्रयत्नों का कार्य के स्वरूप के अनुसार अनिवार्यतः एक खास सिलसिला होगा। कार्य के स्वरूप के अनुसार जो बात उसे पहले करना चाहिए, यदि वह उसको बाद के लिए छोड़ देता है, अथवा उसके कुछ आवश्यक हिस्से को सर्वथा छोड़ देता है, तो निश्चय ही वह गम्भीरतापूर्वक काम नहीं कर रहा, बल्कि काम का बहाना मात्र कर रहा है। चाहे काम शारीरिक हो, अथवा, अन्य प्रकार का, यह नियम समान रूप से लागू होता है। जबतक कोई पहले आटा न गूंदे, चूल्हे की राख हटाकर उसमें आग न सुलगावे, तब तक यह कैसे कहा जाता है कि वह सचमुच रोटी पकाना चाहता है, इसी प्रकार आवश्यक गुण प्राप्त करने के लिए जब तक कोई एक सिलसिले मे कुछ खास नियमों का पालन नहीं करता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि वह सचमुच सद्जीवन बिताना चाहता है!

जहांतक उत्तम जीवन बिताने का सम्बन्ध है, यह नियम विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। कारण शारीरिक काम के सम्बन्ध में, जैसे रोटी बनाने के बारे में परिणाम के द्वारा यह आसानी से मालूम किया जा सकता है कि आदमी सचमुच काम में जुटा हुआ है, या केवल बहाना मात्र कर रहा है किन्तु सद्जीवन की इस प्रकार की कोई कसौटी नहीं है। अगर लोग बिना आटा गूंदे या चूल्हा सुलगाये रोटी पकाने का बहाना मात्र करें, जैसा कि वे सिनेमा में करते हैं, तो परिणाम से अर्थात् रोटी के

अभाव से यह प्रकट हो जाता है कि वे केवल बहाना कर रहे हैं, किन्तु जब मनुष्य सद्जीवन बिताने का बहाना करता होता है तो हमारे पास यह मालूम करने के कोई प्रत्यक्ष चिन्ह नहीं होते कि वह सचमुच प्रयत्न कर रहा है या केवल बहाना कर रहा है, कारण सद्जीवन के परिणाम न केवल आसपास के लोगों के सामने हमेशा स्पष्ट और बुद्धिगम्य ही नहीं होते, बल्कि ये परिणाम उन्हें बहुधा हानिकारक प्रतीत होते हैं। किसी व्यक्ति के कार्यों के प्रति आदर की भावना होना और उसके सम-कालीन व्यक्तियों द्वारा उन कार्यों की उपयोगिता और अच्छाई का स्वीकार किया जाना इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि वस्तुतः उसका जीवन अच्छा जीवन है।

इसलिए सद्जीवन के बाह्य दिखावे और असलियत में भेद करने के लिए एक खास नियमित सिलसिले से गुणों की प्राप्ति द्वारा जो संकेत मिलता है, वह खास तौर पर बहुमूल्य होता है। यह संकेत इस-लिए बहुमूल्य नहीं होता कि इसके द्वारा हम अच्छाई की दिशा में दूसरे लोगों की कोशिशों की गम्भीरता का पता लगा सकते हैं, बल्कि उसके द्वारा हम अपनी सच्चाई को ही कसौटी पर परख सकते हैं, कारण इस दिशा में हम दूसरों को धोखा देने की अपेक्षा अपने आपको बहुत अधिक धोखा दे सकते हैं।

सद्जीवन की ओर प्रगति करने के लिए मनुष्य को क्रमपूर्वक सद-गुणों को प्राप्त करना चाहिए। फलस्वरूप मानव जाति के गुरुओं ने इस प्रकार के सद्गुणों का हमेशा एक निश्चित क्रम निर्धारित किया है।

तमाम नैतिक शिक्षाओं ने सीढ़ियां निर्धारित की हुई हैं और जैसा कि चीनी कहावत है, ये सीढ़ियां पृथ्वी से स्वर्ग को जाती हैं। इन सीढ़ियों के शिखर पर तभी पहुंचा जा सकता है जब निम्नतम सीढ़ी से ऊपर चढ़ना शुरू किया जाय। हिन्दुओं, बौद्धों, और कन्फ्युशियनों की और यूनानी तत्त्ववेताओं की शिक्षाओं में भी सीढ़ियां निर्धारित कर

दी गई हैं और नीचे की सीढ़ी पहले पार किये बिना ऊपर की सीढ़ी पर नहीं पहुंचा जा सकता। मानव जाति के समस्त नैतिक गुरुओं ने चाहे वे धार्मिक श्रेणी के रहे हों या अधार्मिक श्रेणी के, सद्-जीवन के लिए जरूरी गुणों के एक निश्चित क्रम की आवश्यकता स्वीकार की है। इस क्रम की आवश्यकता सृष्टि की व्यवस्था में स्वयं सिद्ध है और इस लिए स्वभावतः हरेक आदमी को उसे मान लेना चाहिए।

किन्तु यह अजीब बात है कि लोगों में सद्गुणों के इस आवश्यक क्रम का मान अधिकाधिक कम होता जा रहा है और अब केवल साधु-सन्त ही उसका ख्याल रखते हैं। साधारण गृहस्थ तो यह समझते हैं कि न केवल निम्न श्रेणी के गुणों का अभाव होते हुए भी, जो कि उच्च गुणों के लिए आवश्यक होते है, उच्च गुण प्राप्त किये जा सकते हैं। बल्कि बड़े से बड़े दुर्गुणों के साथ भी उच्च गुण सम्भव हो सकते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज के अधिकांश लोगों के दिमागों में सद्-जीवन किसे कहते हैं इस बारे में बड़ा भ्रम पैदा हो गया है।

[२]

आजकल लोगों को इस बात की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती कि उत्तम जीवन बिताने के लिए मनुष्य को अपने भीतर एक क्रम से सद्गुणों का विकास करना चाहिए। फलस्वरूप लोगों का इस बात का ज्ञान भी नष्ट हो गया है कि उत्तम जीवन किसे कहते हैं। मेरे खयाल से यह इस प्रकार घटित हुआ है।

जब ईसाई धर्म का उदय हुआ तो उसने पहले की अपेक्षा अधिक उच्च नैतिक आदेश प्रचलित किये और साथ ही सद्गुणों की प्राप्ति के लिए एक अनिवार्य क्रम भी निर्धारित कर दिया अर्थात् उत्तम जीवन बिताने के लिए कुछ उपाय प्रस्तुत किये। ईसाई धर्म ने यह कोई नई बात नहीं की। उसके पहले भी नैतिकता का एक क्रम बंधा

हुआ था ।

प्लेटो ने जिन सद्गुणों का प्रतिपादन किया था, उनमें पहला स्थान आत्म-संयम को दिया गया, उसके बाद साहस और बुद्धिमत्ता को और अन्त में न्याय को। ईसाई धर्म के अनुसार सदगुणों की शुरुआत आत्म-त्याग से होती है और फिर भक्ति और सर्वार्पण के बाद प्रेम को स्थान दिया गया है।

जिन लोगों ने गम्भीरता-पूर्वक ईसाई धर्म को स्वीकार किया और उसके अनुसार सद्जीवन बिताने का प्रयास किया, उन्होंने ईसाई धर्म को इसी रूप में समझा और अपनी वासनाओं का परित्याग कर सद्-जीवन बिताना प्रारम्भ किया। इस आत्म त्याग में आत्म-संयम का भी समावेश हो जाता है।

किन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि इस मामले में ईसाई धर्म ने केवल अन्य धर्मों का अनुसरण मात्र किया। मैं ईसाई धर्म को उसके उच्च स्थान से अन्य अल्प-विकसित धर्मों की श्रेणी में नहीं बिठा सकता। यदि मुझ पर ऐसा करने का दोष लगाया जायगा तो यह मेरे प्रति अन्याय होगा, कारण मैं ईसाई धर्म की शिक्षा को संसार में सर्व श्रेष्ठ मानता हूं। वह अल्प विकसित धर्मों की शिक्षाओं से सर्वथा भिन्न है। ईसाई धर्म की शिक्षा पूर्व प्रचलित शिक्षा का स्थान इसी लिए ले सकी कि वह उससे भिन्न और उच्च थी। किंतु दोनों ही प्रकार की शिक्षायें मनुष्यों को सत्य और श्रेष्ठता की ओर ले जाती हैं और चूंकि ये हमेशा एक जैसी होती हैं, इसलिए उनको प्राप्त करने का मार्ग भी एक ही होना चाहिए। और इस मार्ग पर आगे बढ़ने के प्रथम प्रयास भी अनिवार्यतः ईसाई और अईसाई दोनों के लिए समान होंगे।

ईसाई और अईसाई सद्-जीवन की शिक्षा में यह अन्तर है कि जहाँ अईसाई शिक्षा अन्तिम पूर्णता की शिक्षा है, वहाँ ईसाई शिक्षा असीम पूर्णता की शिक्षा है। प्रत्येक अईसाई शिक्षा मनुष्य के सामने

अन्तिम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है, किन्तु ईसाई शिक्षा उसके सामने असीम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है। उदाहरण के लिए तत्वज्ञानी प्लेटो न्याय को पूर्णता का आदर्श बताता है, किन्तु ईसा का आदर्श प्रेम की असीम पूर्णता है। बाइबिल में कहा है, 'तुम वैसे ही पूर्ण बनो जैसे स्वर्ग में तुम्हारे परम पिता पूर्ण हैं।' यही वह अन्तर है और इसी के फल स्वरूप अईसाई और ईसाई शिक्षाओं में विभिन्न श्रेणी के सद्गुणों को अलग-अलग महत्त्व दिया गया है। अईसाई शिक्षा के अनुसार सर्वश्रेष्ठ सद्गुण प्राप्त किया जा सकता है और इस दिशा में प्रत्येक कदम का तुलनात्मक महत्त्व होता है। जितना ही अधिक बड़ा कदम उठाया जायगा, उतना ही बड़ा उसका महत्त्व होगा। इस प्रकार अईसाई दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्यों को नैतिक और अनैतिक, कम-नैतिक या अधिक नैतिक श्रेणियों में बांटा जा सकता है। किन्तु ईसाई शिक्षा के अनुसार, जो असीम पूर्णता का आदर्श उपस्थित करती है, इस प्रकार का विभाजन नहीं किया जा सकता। उसके अनुसार उच्च-तर और निम्नतर श्रेणियाँ नही हो सकती। उसमें तो असीम आदर्श को ओर प्रत्येक प्रयास को समान माना जाता है।

अईसाई समाज मे मनुष्य जिस सद्गुण को प्राप्त कर लेता है, उसीको उसकी योग्यता की निशानी समझ लिया जाता है। ईसाई धर्म के अनुसार मनुष्य का महत्त्व सद्गुणों की प्राप्ति की क्रिया में समझा जाता है अर्थात् मनुष्य कितने धीमे या कितनी तेजी से सद्गुणों को प्राप्त करता है। अईसाई मतानुसार विवेक-गुण-सम्पन्न मनुष्य इस गुण से शून्य मनुष्य से नैतिक दृष्टि से उच्च समझा जायगा, विवेक के अलावा जो मनुष्य साहस-युक्त होगा, वह और भी ऊंचा समझा जायगा, और विवेक और साहस के अलावा न्यायवान होगा, वह और भी उच्च समझा जायगा। किन्तु ईसाई नैतिक दृष्टि से एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा ऊंचा या नीचा नहीं समझा जा सकता। मनुष्य अमुक समय चाहे जितना ऊंचा क्यों न उठ जाय, किन्तु जिस तेजी के साथ

वह असीम पूर्णता की ओर आगे बढ़ेगा, उसी के अनुसार वह कम या अधिक मात्रा में ईसाई कहलाने का अधिकारी होगा। यही कारण है कि पुराणपंथी की गतिरहित न्याय-निष्ठा को शूली पर चढ़ने वाले पश्चाताप संतप्त चोर की प्रगति से निकम्मा समझा गया।

ईसाई और अईसाई शिक्षाओं में यही अन्तर है। फलतः सद्गुणों की जो सीढ़ियाँ अर्थात् आत्म-संयम और साहस अईसाई समाज में योग्यता की कसौटी समझी जाती हैं, ईसाई धर्म में उनका वैसा कोई महत्त्व नहीं समझा जाता। इसी सम्बन्ध में दोनों शिक्षाओं में अन्तर है। किन्तु नीचे की सीढ़ियों पर चढ़े बिना सद्गुणों की ओर, पूर्णता की ओर कोई प्रगति नहीं हो सकती, इस बारे में ईसाई और अईसाई शिक्षाओं में समानता है। इस विषय में कोई अन्तर नहीं हो सकता।

ईसाई को अईसाई की भाँति ही अपने आपको पूर्ण बनाने की शुरूआत करनी पड़ेगी अर्थात् उसे वहीं से प्रारम्भ करना पड़ेगा, जहाँ से अईसाई शुरू करता है—उसे आत्म-संयम का आश्रय लेना होगा। जो मनुष्य ऊपर की मंजिल में जाना चाहता है, वह नीचे की सीढ़ियों को पार किये बिना ऊपर नहीं जा सकता। अन्तर है तो सिर्फ यही कि जहाँ अईसाई व्यक्ति के लिए आत्म-संयम स्वयं एक सद्गुण है, वहाँ ईसाई के लिए वह उस आत्म-त्याग का एक अंग है जो पूर्णता प्राप्त करने की हर आकांक्षा का अनिवार्य कर्तव्य है। इसलिए देखने में सच्चे ईसाई धर्म को उसी पथ का अनुसरण करना पड़ता है, जिसका अईसाई समाज ने निर्देश और अनुसरण किया है।

किन्तु सभी लोगों ने ईसाई धर्म को पूर्णता प्राप्त करने की आकांक्षा के रूप में ग्रहण नहीं किया है। अधिकांश लोग इसको मुक्ति प्राप्त करवाने वाली शिक्षा समझते हैं। ठीक इसी शिक्षा ने ईसाई धर्म का नैतिक शिक्षा के प्रति मनुष्यों की हार्दिकता और गम्भीरता को नष्ट कर दिया है। विविध ईसाई सम्प्रदायों के प्रतिनिधि चाहे जितना पिष्ट-पेषण क्यों न करें कि उनके मुक्ति के साधन मनुष्य के सद्-

जीवन प्राप्त करने के मार्ग में बाधक नहीं होते, बल्कि उल्टे साधक होते हैं, फिर भी अमुक मन्तव्यों से अमुक निष्कर्ष निकलते ही हैं। फिर आप चाहे जितनी दलीलें दीजिए, यदि एक बार आपने उन मन्तव्यों को स्वीकार कर लिया तो उनसे पैदा होने वाले निष्कर्षों को भी मानना ही पड़ेगा। यदि एक आदमी यह विश्वास करता है कि पादरी की दया से वह बच सकता है तो स्वभावतः वह यह सोचेगा कि सद्जीवन बिताने के लिए प्रयत्न करना बेकार है—खासकर उस समय जब उसे यह कहा जाता हो कि अपने प्रयत्नों से अच्छा बनने की आशा करना भी एक पाप है। फलस्वरूप जो मनुष्य यह मानता है कि पाप या पाप के परिणामों से बचने के लिए अपने खुद के प्रयत्नों के अलावा भी अन्य साधन हैं, वह उस व्यक्ति के समान उत्साह और गम्भीरता से प्रयत्न नहीं कर सकता, जो अन्य साधनों से अनभिज्ञ है। और जब पूरी गम्भीरता के साथ प्रयत्न नहीं किया जायगा और व्यक्तिगत प्रयत्नों के अलावा अन्य साधनों का ज्ञान भी होगा तो मनुष्य उत्तम जीवन के लिए आवश्यक सद्गुणों की प्राप्ति के अनिवार्य क्रम की भी अनिवार्यतः उपेक्षा करेगा। जो लोग ईसाई धर्म को मानते हैं, उनमें से अधिकांश की यही अवस्था हुई है।

[३]

आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य व्यक्तिगत प्रयत्न करे, बल्कि उसकी प्राप्ति के अन्य साधन भी हैं—इस सिद्धान्त ने उत्तम जीवन बिताने के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों में शिथिलता पैदा कर दी और लोग इस बात की उपेक्षा करने लगे कि सद्जीवन के लिए क्रमपूर्वक सद्गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

जिन लोगों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया, उनमें से अधिकांश

ने उसको बाहरी तौर पर ही स्वीकार किया उन्होंने पौराणिक वाद के स्थान पर ईसाई धर्म की स्थापना का लाभ उठाकर अपने-आप को पौराणिक सद्गुणों की प्राप्ति के झंझट से मुक्त कर लिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी पशु-वृत्ति से संघर्ष करना छोड़ दिया।

जो लोग गिर्जे की शिक्षाओं पर विश्वास करना छोड़ देते हैं, उनकी भी ऐसी ही दशा होती है। उनको भी ईसाई धर्म के उपासकों के समान समझना चाहिए। ये 'प्रभु-कृपा' के बजाय अधिकांश लोगों द्वारा पसन्द किये जाने वाले किसी काल्पनिक अच्छे काम का अर्थात् विज्ञान, कला अथवा मानवता का सहारा लेते हैं और इस प्रकार के कल्पित अच्छे काम के नाम पर यह समझ बैठते हैं कि सद्जीवन के लिए क्रमपूर्वक सद्गुणों का विकास करना आवश्यक नहीं है। ये लोग रंग-मंच के अभिनेताओं की भाँति उत्तम जीवन बिताने का बहाना करके ही सन्तोष मान लेते हैं।

जिन लोगों ने ईसाई धर्म को उसके यथार्थ रूप में स्वीकार नहीं किया, और पौराणिकवाद से विचलित हो गये, वे आत्म-त्याग और आत्म-संयम को छोड़कर ईश्वरीय और मानवीय प्रेम तथा न्याय का उपदेश देने लगे अर्थात् निम्न सद्गुणों को छोड़कर उच्च सद्गुणों का प्रचार करने लगे। दूसरे शब्दों में उन्होंने असली सद्गुणों का नहीं बल्कि दिखावटी सद्गुणों का प्रचार किया।

कुछ लोग आत्म-त्याग किये बिना ही ईश्वर और मनुष्य से प्रेम करने का उपदेश देते हैं और कुछ आत्म-संयम किये बिना मानवीयता, मानवता की सेवा का प्रचार करते हैं। और चूंकि यह शिक्षा एक ओर मनुष्य को उच्च नैतिक आसन पर स्थित होने का दम्भ करने का मौका देती है और दूसरी ओर उसे अत्यन्त मूल-भूत नैतिक नियमों से मुक्त करके उसकी पशु-वृत्ति को प्रोत्साहन देती है, इसलिए धर्म पर आस्था रखनेवाले और न रखनेवाले दोनों ही इस शिक्षा को तत्काल स्वीकार कर लेते हैं।

कुछ समय पहले की बात है कि पोप का समाजवाद पर एक गश्ती-पत्र प्रकाशित हुआ था। इस पत्र में समाजवाद के इस दृष्टिकोण का खण्डन किया गया था कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार माना जाना एक अन्याय है। उसमें साफ़ तौर पर यह कहा गया था कि 'अपनी खुद की अथवा अपने गृहस्थी की आवश्यकता के लिए जिस चीज की जरूरत हो, धर्म उसे दूसरों में बांटने का आदेश नहीं देता और न ही अपने पद-प्रतिष्ठा के अनुसार जीवन बिताने के लिए जिस चीज की आवश्यकता हो उसे दूसरों को देना चाहिए। कारण किसी को भी अपने पद-प्रतिष्ठा के प्रतिकूल जीवन न बिताना चाहिए, किन्तु जब आवश्यकता की भलीभांति पूर्ति हो जाय और अपनी पद-प्रतिष्ठा का भली प्रकार विचार कर लिया जाय, तब जो कुछ बच रहे, उसमें से गरीबों को देना कर्तव्य है। जो कुछ बच रहे, उसका दान करो।'

यह है वह उपदेश जो गिर्जों के मुखिया ने अर्थात् पोप महोदय ने दिया है। गिर्जे के अन्य पादरी भी ऐसा ही उपदेश देते हैं, जो यह मानते हैं कि केवल कर्म द्वारा मुक्ति नहीं हो सकती। एक ओर तो ये लोग यह स्वार्थमय शिक्षा देते हैं कि तुम अपने पड़ोसियों को वही वस्तु दे सकते हो, जिसकी तुम्हें खुद को आवश्यकता न हो, और दूसरी ओर ये प्रेम का उपदेश देते हैं।

यद्यपि बाइबिल में आत्म-त्याग के आदेश भरे पड़े हैं और यह बताया गया है कि पूर्णता प्राप्त करने के लिए आत्म-त्याग की सर्व-प्रथम आवश्यकता होती है, फिर भी लोग खद यह यकीन कर लेते हैं और दूसरों को करा देते हैं, कि जिस वस्तु का सेवन करने का उन्हें अभ्यास पड़ा हुआ है, अथवा जिस वस्तु को वे अपनी शान के लिए आवश्यक समझते हैं, उसका त्याग किये बिना ही मनुष्यों से प्रेम किया जा सकता है। जो लोग गिर्जे और ईसाई धर्म को नहीं मानते और अपने-आपको स्वतंत्र विचारक कहते हैं, वे भी इसी प्रकार बोलते, लिखते और कार्य करते हैं। ये लोग खुद भी समझ लेते हैं और दूसरों

को भी समझाने की कोशिश करते हैं कि अपनी आवश्यकताओं को घटाये बिना, अपने विकारों को वश में किये बिना ही वे मानव जाति की सेवा कर सकते हैं, उत्तम-जीवन बिता सकते हैं।

मनुष्यों ने सद्गुणों के पौराणिक क्रम को एक ओर ताक में रख दिया और ईसाई धर्म की शिक्षाओं का वास्तविक अर्थ ग्रहण न करने के कारण ईसाई क्रम को भी स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार वे पथ प्रदर्शन को खो बैठे।

[४]

पुराने ज़माने में जब ईसाई शिक्षाओं का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था सुकरात से लगा कर अन्य सभी धर्म गुरुओं ने आत्म-संयम को जीवन का सर्वप्रथम सद्गुण समझा। यह खयाल किया जाता था कि हरेक सद्गुण का प्रारम्भ आत्म-संयम से होना चाहिए और उसको प्राप्त करने के बाद ही अन्य गुण प्राप्त किये जा सकते हैं। यह साफ तौर पर समझा जाता था कि जिस आदमी ने आत्म-संयम नहीं किया और अपनी असंख्य इच्छायें बढ़ा कर उनके अधीन हो गया, वह उत्तम जीवन नहीं बिता सकता। यह भी स्पष्ट था कि उदारता और प्रेम की बात तो दूर रही, तटस्थता और न्याय की कल्पना करने के पहिले मनुष्य को संयम का पाठ सीखना चाहिए। हमारे आजकल के विचारों के अनुसार इस प्रकार की किसी बात की आवश्यकता नहीं। हमको पक्का यकीन है कि जिस मनुष्य ने अपनी इच्छाओं को समाज में अधिक-से अधिक बढ़ा लिया है और जो मनुष्य उसे गुलाम बनाकर रखनेवाली सैकड़ों अनावश्यक आदतों को सन्तुष्ट किये बिना जीवित नहीं रह सकता, वही मनुष्य सर्वथा नैतिक और उत्तम जीवन बिता सकता है। किसी भी दृष्टिकोण से देखिये, चाहे वह उपयोगितावाद का निम्नतम दृष्टिकोण हो, चाहे पौराणिकवाद का उच्चतर दृष्टिकोण (जो न्याय पर

जोर देता है) अथवा सर्वश्रेष्ठ ईसाई दृष्टिकोण हो (जो प्रेम का आदेश देता है) आपको निश्चय ही यह साफ तौर पर मालूम होगा कि जो मनुष्य दूसरों के श्रम का, बहुधा कष्टकारक श्रम का, अपने आनन्द के लिए उपयोग करता है (इस श्रम के बिना वह आसानी से काम चला सकता है) वह अन्याय करता है। और यही वह पहला अन्याय है जिसको यदि वह उत्तम जीवन बिताना चाहता है तो उसे छोड़ देना चाहिए।

उपयोगितावाद के दृष्टिकोण के अनुसार इस प्रकार का आचरण बुरा है, कारण जब तक मनुष्य दूसरों को अपने लिए काम करने को मजबूर करता है, तब तक उसकी सदा अस्थिर दशा बनी रहती है, वह अपनी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने का आदी हो जाता है और उनका गुलाम बन जाता है तथा जो लोग उसके लिए काम करते हैं, उनमें उसके प्रति ईर्ष्या और घृणा के भाव पैदा हो जाते हैं और वे उस घड़ी की प्रतीक्षा में रहते हैं जब वे अपने आप को उस काम के बन्धन से मुक्त कर सकें। फलस्वरूप उस आदमी के लिए हमेशा इस बात का खतरा रहता है कि वह अपनी जड़ जमा कर बैठी हुई आदतों को सन्तुष्ट करने में असमर्थ हो जाय।

न्याय के दृष्टिकोण से भी ऐसा आचरण बुरा है, कारण अपने आनन्द के लिए उन लोगों से श्रम कराना उचित नहीं है जो इस आनन्द का सौवां हिस्सा भी अपने लिए प्राप्त नहीं कर सकते।

ईसाई धर्म द्वारा अनुमोदित प्रेम के दृष्टिकोण के अनुसार यह सिद्ध करने की शायद ही जरूरत हो कि जो मनुष्य दूसरों से प्रेम करता है वह अपने आनन्द के लिए दूसरों की मेहनत के फल का उपभोग करने के बजाय स्वयं उनके लिए काम करेगा।

किन्तु आधुनिक समाज में उपयोगिता, न्याय और प्रेम के आदेशों का सर्वथा अवहेलना की जाती है। अपनी इच्छाओं को मर्यादित करना न तो सर्वप्रथम और न ही अन्तिम कर्तव्य समझा जाता है। उत्तम जीवन

के लिए इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।

इसके विपरीत जावन की प्रचलित और बहुमान्य शिक्षा के अनुसार अपनी इच्छाओं में वृद्धि करना आवश्यक माना जाता है, इसे विकास, सभ्यता, संस्कृति और पूर्णता का चिन्ह समझा जाता है। पढ़े लिखे कहलाने वाले लोग आराम-सूचक आदतों यानी स्त्रियोचित नजाकत को न केवल निर्दोष बल्कि उत्तम समझते हैं, नैतिक उच्चता का द्योतक मानते हैं। वे इसे करीब-करीब एक सद्गुण ही मान बैठे हैं।

यह खयाल किया जाता है कि आवश्यकताओं की मात्रा जितनी ही अधिक होगी और आवश्यकतायें जितनी सुसंस्कृत (बढ़ी-चढ़ी) होंगी, उतना ही अच्छा होगा। गत दो शताब्दियों की वर्णनात्मक कविता और खास कर उपन्यासों से यह बात भली भांति प्रकट हो जाती है। सद-गुणों को व्यक्त करने वाले नायक और नायिकाओं का इनमें कैसा चित्र खींचा गया है? अधिकतर उदाहरण ऐसे मिलते हैं कि जिनको उच्चता और श्रेष्ठता का प्रतिनिधि माना गया है, वे पथभ्रष्ट आलसियों के अतिरिक्त कुछ नहीं। वे हजारों लोगों के श्रम का लाभ उठा कर आनन्द लूटते हैं और खुद किसी के लिए कुछ भी उपयोगी काम नहीं करते। इन उपन्यासों में नायिकायें भी ऐसी चित्रित का गई हैं जो ऐसे लोगों का किसो न किसी तरह मनोरंजन करती हैं, उनके समान ही आलसी होती हैं, और उनकी तरह ही अपने भोग-विलास की खातिर दूसरों के श्रम को हड़पने को सदा उद्यत रहती हैं।

मैं उनका जिक्र नहीं करता जो वास्तव में संयमी और परिश्रमी हैं और जिनका साहित्य में कहीं-कहीं अस्तित्व पाया जाता है। मैं तो सामान्य नमूने का जिक्र करता हूं जो सर्वसाधारण के लिए आदर्श का काम देता है। मैं तो उस चरित्र का उल्लेख करता हूं जिसको अपनाने का अधिकांश स्त्री पुरुष प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे याद है कि जब मैंने उपन्यास लिखे थे तो मुझे कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा था। मैं मानता हूं कि उन उपन्यासकारों को, जिन्हें वास्तविक नैतिक सौन्दर्य

की धुंधली सी भा कल्पना होती है मेरे हीं समान कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कठिनाई इस बात की होती है कि उच्च श्रेणी के किसी ऐसे पात्र का चित्रण किया जाय जो आदर्श रूप से भला और दयालु हो और साथ ही चित्रण वास्तविक भी हो। वास्तविक चित्रण करने के लिए उच्च, पढ़े लिखे वर्ग के स्त्री पुरुष को उसके सामान्य वातावरण में दिखाना चाहिए अर्थात उसके भोग-विलास, शारीरिक ऐंकारी और दूसरों से मेवायें लेना आदि का वर्णन किया जाना चाहिए। नैतिक दृष्टि से इस प्रकार का मनुष्य निश्चय ही अवांछनीय समझा जायगा। किन्तु उसका इस प्रकार का चित्रण करना आवश्यक होता है ताकि वह आकर्षक प्रतीत हो। और उपन्यासकार उसको ऐसा ही चित्रित करने की कोशिश करते हैं। मैंने भी ऐसा ही किया था और विचित्र बात यह है कि ऐसा चित्र चित्रित करने में अर्थात् एक नैतिकता-विहीन व्यभिचारी और हत्यारे, सर्वथा निरुपयोगी, बेकार इधर-उधर डोलने वाले, बने-ठने हास्य-पात्र को आकर्षक चित्रित करने में अधिक कला अथवा प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। उपन्यासों के पाठक अधिकतर ऐसे ही आदमी होते हैं और इसलिए फौरन विश्वास कर लेते हैं कि उपन्यासों के ऐसे पात्र वस्तुतः बड़े श्रेष्ठ आदमी होते हैं।

[५]

आज कल के लोग आत्म-संयम और आत्म-त्याग को वस्तुतः उत्तम और वांछनीय सद्गुण नहीं समझते, बल्कि इसके विपरीत आवश्यकताओं में वृद्धि करने को अच्छा और उन्नति का द्योतक समझते हैं। इस बात का स्पष्ट प्रमाण वह शिक्षा है जो हमारे समाज में अधिकतर बालकों को दी जा रही है। उनको आत्म-संयम अथवा आत्म-त्याग की शिक्षा नहीं दी जाती, बल्कि उनको जान बूझ कर नजाकत, शारीरिक

बेकारी और विलासिता की शिक्षा दी जाती है।

मेरी बहुत दिनों से यह इच्छा रही कि निम्न कथानक वाली एक कहानी लिखूं। एक स्त्री को एक दूसरी स्त्री हानि पहुंचाती है। पहली स्त्री बदला लेने पर उतारू होती है। वह अपने शत्रु का बच्चा उठा ले जाती है और एक जादूगर के पास जाकर यह पूछती है कि यह चुरा कर लाये हुए शिशु का—अपने शत्रु के एक मात्र शिशु से किस प्रकार कड़े से कड़ा बदला ले। जादूगर शिशु को एक खास जगह ले जाने के लिए कहता है और स्त्री को यकीन दिलाता है कि वहां उससे भयंकर बदला ले लिया जायगा। दुष्ट स्त्री जादूगर की सलाह मान लेती है, किन्तु उसे यह देखकर आश्चर्य होता है कि उस शिशु को एक निस्सन्तान धनिक गोद ले लेता है। स्त्री पुनः जादूगर के पास जाती है और उसे बुरा भला कहती है। जादूगर उसे प्रतीक्षा करने को कहता है। शिशु विलासिता और नजाकत के वातावरण में बड़ा होता है। स्त्री असमंजस में पड़ जाती है, किन्तु जादूगर उसे फिर प्रतीक्षा करने को कहता है। आखिर ऐसा वक्त आता है जब दुष्ट स्त्री न केवल सन्तुष्ट हो जाती है बल्कि उसे अपने शत्रु के पुत्र पर दया आने लगती है। वह सम्पतिजनित भोग-विलास और स्वच्छंदता के वातावरण में बड़ा होता है और अपनी अच्छी प्रकृति के कारण बर्बाद हो जाता है। इसके बाद शारीरिक कष्टों, दरिद्रता और अपमान का युग प्रारम्भ होता है। खासकर अपमान उसके हृदय में शूल की तरह चुभता है, किन्तु उसे पता नहीं होता कि उसका उसे किस प्रकार सामना करना चाहिए। एक ओर नैतिक जीवन बिताने की इच्छा उसके मन में जागृत होती है और दूसरी ओर उसका नाजुक शरीर जो विलासिता और बेकारी का आदी होता है, जवाब दे देता है। ऊंचे उठने के उसके सब प्रयास निष्फल जाते हैं। उसका अधिकाधिक पतन होता है। अपने आपको भूलने के लिए वह शराब पीने लगता है, जुआ खेलता है, चोरी करता है और अन्त में पागल हो जाता है अथवा आत्महत्या कर लेता है।

आजकल धनिक वर्ग के बालकों को जैसी शिक्षा दी जाती है, उस पर किसी भी व्यक्ति को वेदना हुए बिना नहीं रह सकती। इन बालकों में इनके माता-पिता, खासकर मातायें, जो अवगुण और बुराइयाँ भर रहे हैं,उन्हें निष्ठुर से निष्ठुर शत्रु भले ही भरना पसन्द करें। यदि हमको इस बात का पता हो कि माता पिता द्वारा भली प्रकार तबाह किये जाने वाले बालकों की आत्माओं में क्या हो रहा है तो हम इस दृश्य को और इससे भी अधिक इसके परिणामों को देख कर स्तम्भित रह जायेंगे। उनमें ऐसे समय नजाकत की आदतें डाली जाती है, जब वे उनके नैतिक महत्त्व को नहीं समझ पाते। सादगी और आत्म-संयम की केवल उपेक्षा ही नहीं की जाती बल्कि पुराने जमाने की शिक्षण-पद्धति के सर्वथा विपरीत इस गुण को पूर्णतः कुंठित कर दिया जाता है। न तो मनुष्य को काम करने की शिक्षा दी जाती है और न उसमें वे गुण विकसित किए जाते हैं जो उपयोगी श्रम के लिए आवश्यक होते हैं अर्थात् मन की एकाग्रता, कठिन परिश्रम, सहनशीलता, कार्य के लिए उत्साह, बिगड़े हुए काम को बनाने की योग्यता, कार्य के सफल होने पर प्रसन्नता अनुभव करने की शक्ति आदि। बल्कि उसे आलस्य की और श्रम द्वारा तैयार होने वाली चीजों को तुच्छ समझने की शिक्षा दी जाती है। वह यह नहीं सोचता कि चीजें किस प्रकार तैयार होती हैं, वह तो चीजों को खराब करता रहता है, फेंक देता है और पैसा खर्च करके चाहे जैसी फिर चीजें खरीद लेता है। विवेक प्रारम्भिक सद्‌गुण है, अन्य सद्‌गुण प्राप्त करने के लिए उनकी अनिवार्य रूप से आवश्यकता होती है, किन्तु मनुष्य यह सद्‌गुण नहीं प्राप्त कर सकता। उसे असमर्थ बना दिया जाता है। उसे ऐसी दुनिया में खुला छोड़ दिया जाता है जहां लोग न्याय, मानव सेवा और प्रेम के उच्च गुणों की बड़ाई मारते हैं और उनका प्रचार करते हैं।

यदि एक नौजवान नैतिक दृष्टि से मंद और कुंठित स्वभाव

वाला हो तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि वह वस्तुतः उत्तम जीवन और नकली उत्तम जीवन में भेद नहीं कर सकता; वह प्रचलित भ्रम की दुनिया में सन्तुष्ट रहता है ऐसी दशा में प्रकटतः सब ठीक-ठाक चलता रहता है और कभी-कभी मृत्यु तक भी ऐसे आदमी का नैतिक अन्तःकरण जाग्रत नहीं हो पाता।

किन्तु हमेशा ऐसा नहीं होता। खासकर पिछले दिनों से ऐसा वातावरण बन गया है कि इस प्रकार के जीवन की अनैतिकता का ज्ञान हुए बिना नहीं रहता और अनचाहे वह हृदय में समा जाता है। वास्तविक शुद्ध नैतिकता का अधिकाधिक तकाजा होने लगता है और तब एक कष्टदायक आन्तरिक संघर्ष और मुसीबतों की शुरूआत होती है। और इसका परिणाम कुछ अपवादों को छोड़कर नैतिक भावना की पराजय ही होता है।

मनुष्य यह महसूस करता है कि उसका जीवन बुरा है और उसको जड़ से सुधारना चाहिए, क्योंकि जो लोग ऐसे संघर्ष मे से गुजर चुके होते है, और परास्त हो चुके होते हैं, चारों तरफ से उस पर हमला कर देते हैं, उसके इरादों को तोड़ डालने का प्रयत्न करते हैं। वे हर प्रकार से उसको यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करते है कि इस सुधार की बिल्कुल आवश्यकता नहीं, उत्तम जीवन का आत्म-संयम और आत्म-त्याग से कोई वास्ता नहीं, ठूंस-ठूंस कर खाते रहने, सज-धज कर रहने, शरीर से कुछ भी श्रम न करने और दुराचार करने के बावजूद मनुष्य बिल्कुल भला और उपयोगी हो सकता है और अधिकांश उदाहरणों में यह संघर्ष शोचनीय ढंग से समाप्त हो जाता है। या तो मनुष्य अपनी दुर्बलता के वश होकर सर्वसाधारण की राय के आगे झुक जाता है, अन्तःकरण की आवाज को दबा देता है, अपना समर्थन करने के लिए अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करता है और पुराना स्वच्छन्द जीवन जारी रखता है और अपने दिल में यह समझ लेता है कि देवताओं पर श्रद्धा रखने या विज्ञान, राष्ट्र अथवा कला की उन्नति

में सहयोग देने से उद्धार हो जायगा, या संघर्ष करता है, सहन करता है और अन्त में पागल हो जाता है या आत्म-हत्या कर लेता है।

चारों ओर से प्रलोभनों द्वारा घिरे रहने के कारण आलकल का मनुष्य उस सत्य को क्वचित ही समझ पाता है, जो हजारों वर्ष पहले सभी विवेकशील व्यक्तियों के लिए प्रारम्भिक सत्य था और आज भी है। अर्थात् उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि बुरे जीवन को छोड़ दिया जाय, इसी प्रकार उच्च सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए सबसे पहले निवृति अथवा आत्म-संयम या आत्म-त्याग की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि मनुष्य अपने क्रमिक प्रयत्नों द्वारा इस प्रारम्भिक सद्गुण को प्राप्त करने में क्वचित ही सफल होता है।

(६)

मैंने हाल ही में निर्वासित रूसी ओगारियोफ के पत्र पढ़े हैं। ओगारियोफ उन उच्च शिक्षा-प्राप्त और प्रगतिशील पुरुषों में थे जो सन् १८३०-४० के बीच हुए हैं। उन्होंने ये पत्र इरजन नाम के एक उच्च-शिक्षित और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति को लिखे थे। ओगारियोफ ने इन पत्रों में अपने हार्दिक विचारों और उच्च आकांक्षाओं को प्रकट किया है और हम समझे बिना नहीं रह सकते कि जैसा एक नौजवान के लिए स्वाभाविक होता है, ओगारियोफ ने अपने मित्र के आगे अपने-आपको अच्छे रूप में पेश करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने आत्म-साधना, पावन मित्रता, प्रेम, विज्ञान तथा मानव सेवा आदि विषयों की चर्चा की है। साथ ही उन्होंने बड़ी शान्ति के साथ यह भी लिखा है कि मैं बहुधा अपनी जीवन-संगिनी को नाराज कर देता हूं जब मैं नशे की हालत में घर लौटता हूं अथवा एक पतित किन्तु प्रिय प्राणी के साथ घण्टों गायब रहता हूं।

वस्तुतः इस दयालु, प्रतिभाशाली और सुशिक्षित व्यक्ति को इस बात में कोई बुराई ही नहीं मालूम हुई कि अपनी पत्नी के मौजूद होते हुए, जब कि उसके बच्चा होने वाला था, वह शराब के नशे में घर लौटा और एक भ्रष्ट औरत के साथ ग़ायब हो गया। उसके दिमाग़ में यह बात पैठ ही न पाई कि जब तक वह अपने साथ संघर्ष नहीं करता और शराब पीने और व्यभिचार करने की अपनी इच्छा पर कुछ अंशों में ही सही काबू नहीं पा लेता, तब तक वह किसी की सेवा करना तो दूर रहा; मित्रता और प्रेम की कल्पना भी नहीं कर सकता। किन्तु उसने न केवल इन दुर्गुणों के विरुद्ध संघर्ष ही नहीं छोड़ा, बल्कि उसका यह ख्याल रहा कि ये दुर्गुण नहीं, बल्कि अच्छी बातें हैं और आत्म-साधना में इनके कारण कोई रुकावट पैदा नहीं होती। इसीलिए वह इनको छिपाने के बजाय अपने मित्र के आगे, जिसकी दृष्टि में वह अच्छे रूप में उपस्थित होना चाहता है, प्रकट कर देता है।

यह अर्द्ध-शताब्दि पहले की बात है। मैं ऐसे व्यक्तियों के ज़माने में रह चुका हूं। मुझे ओगारियोफ और इरज़न और इसी नमूने के दूसरे लोगों और इसी परम्परा में शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला था। इन सभी लोगों के जीवन में उल्लेखनीय विषमता थी। एक ओर तो उनमें सद्जीवन की हार्दिक और उत्कट इच्छा थी और दूसरी ओर उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं पर कोई लगाम न थी। उनके ख्याल से असंयत जीवन श्रेष्ठ जीवन के मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाल सकता और न अच्छे और महान कार्य करने में बाधक हो सकता है। वे बिना गून्दे हुए आटे की रोटियां सर्द चूल्हे में रखकर यह आशा करते थे कि उन्हें पकी हुई रोटी प्राप्त हो जायगी और जब उम्र बढ़ने के साथ वे यह कहते कि रोटी तो पकी नहीं, अर्थात् उनके जीवन का सद्परिणाम नहीं निकला, तो उन्हें इसमें एक खास किस्म का दुखान्त संयोग प्रतीत होता।

और वस्तुतः ही ऐसी जिन्दगियों की दुखान्त समाप्ति भयंकर होती है और जो दुखान्त संयोग इरज़न, ओगारियोफ और उनके समय के दूसरे व्यक्तियों के जीवन मे पाया जाता है, वही आज के बहुत से कथित पढ़े-लिखे लोगों के जीवन में पाया जाता है, जो कि उनके जैसे ही विचार रखते हैं। एक मनुष्य सद्जीवन बिताना चाहता है, किन्तु इसके लिए जो क्रमबद्धता आवश्यक होती है, वह उस समाज में खा जाती है, जिसमें कि वह रहता है। जैसा कि पचास वर्ष पहले ओगारियोफ, इरज़न और दूसरे लोगों का विचार था उसी के अनुसार इस जमाने के अधिकांश लोगों को यह यकीन दिलाया जाता है कि विलासी जीवन बिताने, मीठे और गरिष्ठ पदार्थ खाने, हर प्रकार से आनन्द भोगने और अपनी समस्त इच्छाओं को संतुष्ट करने आदि की चेष्टायें सद्जीवन बिताने के मार्ग में बाधक नहीं होतीं। किन्तु जैसा कि प्रकट है, उनको सद्जीवन नसीब नहीं होता और तब वे निराश होकर कहते हैं—मानव जीवन का दुखान्त संयोग ऐसा ही है।

इस विषय में एक और विचित्र बात है। यह लाग जानते हैं कि मनुष्यों में सुख साधनों का बंटवारा समान नहीं है। वे इस विषमता को बुरा समझते हैं और उसको ठीक करना चाहते हैं, किन्तु अपने सुख-साधनों में वृद्धि करने अर्थात् सुख-साधनों के विषम विभाजन में वृद्धि करने के प्रयत्न नहीं छोड़ते। उनके इस व्यवहार की तुलना उन लोगों के व्यवहार से की जा सकती है जो एक बगीचे में पहले घुस पड़ते हैं और जितनी जल्दी हो सके सब फल अपने ही लिए इकट्ठे करने की कोशिश करते हैं। एक ओर तो वे अपने और बाद मे आने वालों के बीच बगीचे के फलों का अधिक समान विभाजन करना चाहते हैं और दूसरी ओर अपने बस भर सब फलों को अपने लिए तोड़ते रहते हैं।

[७]

मनुष्य अपनी वासनाओं की पूर्ति में लगे रहें और इस वासनामय जीवन को अच्छा समझें और साथ ही वे यह समझते रहें कि वे अच्छा, उपयोगी, न्याय तथा प्रेम-पूर्ण जीवन बिता सकते हैं, यह इतना आश्चर्यकारक भ्रम है कि मेरे ख्याल से आने वाली पीढ़ियाँ यह समझ ही न पायेंगी कि इस ज़माने के लोगों का 'उत्तम जीवन' से क्या तात्पर्य था, जब धनिक वर्गों के ठूंस ठूंस कर खाने वाले विलासी और कामुक लोगों के लिए यह कहा जाता था कि वे उत्तम जीवन बिताते हैं। सच बात तो यह है कि यदि कोई केवल हमारे धनिक वर्गों के जीवन के परम्परागत दृष्टिकोण को क्षण भर के लिए एक ओर रख दे और—मैं नहीं कहता धार्मिक दृष्टिकोण से विचार करे, बल्कि न्याय की अति साधारण व्यवस्था को सामने रखकर विचार करे तो उसे यकीन हो जायगा कि न्याय अथवा औचित्य के स्पष्टतम नियमों की अवहेलना करते हुए, जैसी अवहेलना करना बच्चे खेल तक में ठीक नहीं समझते, हम धनिक वर्गों के लोगों को उत्तम जीवन की चर्चा करने का कोई अधिकार नहीं है।

हमारे समाज का कोई भी आदमी जो उत्तम जीवन बिताने को शुरुआत करना चाहे—नहीं, नहीं उत्तम जीवन बिताने की दिशा में थोड़ा भी आगे बढ़ने की ओर प्रवृत्त हो, उसके लिए यह आवश्यक है कि वह सबसे पहले बुरा जीवन व्यतीत करना त्याग दे, दुष्ट जीवन के उस वातावरण को ही नष्ट कर दे जिसके बीच वह घिरा हुआ रहता है।

हम अपने जीवन में सुधार न करने के लिए बहुधा यह दलील सुनते हैं कि जिस प्रकार का जीवन हम बिताते आये हैं, उससे विपरीत कोई भी काम अस्वाभाविक और हास्यास्पद होगा। हमारी दिखावटीपन की इच्छा का द्योतक होगा—और इसलिए सत्कार्य न होगा।

प्रतीत होता है यह दलील इसलिए जान-बूझकर गढ़ी गई है कि लोग अपने बुरे जीवन में परिवर्त्तन ही न कर पायें। यदि हमारा समस्त जीवन अच्छा, न्यायपूर्ण और दयालु हो, तभी सामान्य जीवन-पद्धति के अनुकूल होने वाला कार्य सत्कार्य हो सकता है। यदि हमारा आधा जीवन अच्छा हो और शेष आधा जीवन बुरा, तो सामान्य जीवन-पद्धति के प्रतिकूल पड़ने वाला कार्य अच्छा हो भी सकता है और नहीं भी। उस कार्य के अच्छे या बुरे होने की बराबर-बराबर सम्भावना रहती है। किन्तु यदि जीवन सर्वथा बुरा और गलत हो, जैसा कि उच्च श्रेणियों का होता है, तो मनुष्य जीवन की सामान्य धारा के विपरीत गये बिना कोई अच्छा काम कर ही नहीं सकता। जीवन-धारा के अनुसार चलकर वह बुरा काम तो कर सकता है किन्तु अच्छा काम नहीं कर सकता।

जो मनुष्य हमारे धनिक वर्गों के जीवन का अभ्यस्त हो, वह जब तक बुरे वातावरण से, जिसमें वह डूबा रहता है, बाहर नहीं निकलता, तब तक उत्तम जीवन नहीं बिता सकता; जब तक वह बुराई करना नहीं छोड़ देता, तब तक अच्छाई करना शुरू नहीं कर सकता। यह असम्भव है कि मनुष्य भोग-विलास में रह-रहकर सत्यतापूर्ण जीवन बिता सके। जब तक वह अपने जीवन में परिवर्तन नहीं करता, सत्य की ओर जाने वाली पहला सीढ़ी पर पैर नहीं धरता, तब तक सद्-जीवन के लिए वह जो भी प्रयत्न करेगा, सब निष्फल जायेंगे। पौरा-णिक और इससे भी अधिक ईसाई मतानुसार उत्तम जीवन को एक ही तरीके से नापा जा सकता है। उसे हम गणित का तरीका कह सकते हैं। हमें यह देखना होगा कि मनुष्य खुद को कितना प्रेम करता है और दूसरों को कितना। हम खुद को ही जितना कम प्रेम करेंगे, अपने लिए कम चिन्ता करेंगे और अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के श्रम का कम उपयोग करेंगे तथा दूसरों से जितना अधिक प्रेम करेंगे, दूसरों की जितनी चिन्ता करेंगे, उनके लिए परिश्रम करेंगे, उतना ही

हमारा जीवन उत्तम होगा।

संसार के सभी सन्तों ने अच्छाई का यही अर्थ समझा है, सभी सच्चे धार्मिक पुरुष ऐसा ही मानते हैं और आज जन-साधारण भी उसका ठीक यही अर्थ करते हैं। मनुष्य जितना ही अधिक दूसरों को देता है और दूसरों से जितना ही कम अपने लिए चाहता है, उतना ही वह श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत जितना ही कम वह दूसरों को देता है और अपने लिए अधिक चाहता है, उतना ही वह बुरा होता है।

जो मनुष्य दूसरों के लिए अपने दिल में अधिक-से-अधिक प्रेम-भावना रखता है और अपनी खुद की ओर से उदासीन रहता है, वह न केवल नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ हो जाता है, बल्कि वह अपनी जितनी ही कम चिन्ता करता है उतना ही उसके लिए श्रेष्ठ बनना सुगम होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपने को जितना ही अधिक प्रेम करता है और फल-स्वरूप दूसरों से जितनी ही अधिक सेवा लेता है उतनी ही उसके लिए दूसरों से प्रेम करने और उनकी सेवा करने की कम सम्भावना होती है और यह सम्भावना उतने ही अंशों में कम नहीं होती जितने अंशों में कि हमारी अपने प्रति प्रेम की मात्रा बढ़ी हुई होती है, बल्कि वह उससे कहीं अधिक कम हो जाती है। जिस प्रकार कि यदि हम वजन करने के काँटे को लम्बे सिरे से छोटे सिरे की ओर चलावें, तो इसके फलस्वरूप लम्बा डंडा न केवल लंबा न होगा, बल्कि छोटा और भी छोटा हो जायगा। इसी प्रकार यदि किसी आदमी में प्रेम करने का गुण है और वह अपने आप से ज्यादा प्रेम करने लगता है, अपनी ज्यादा फिक्र करता है, तो दूसरों से प्रेम करने और दूसरों की चिन्ता करने की उसकी शक्ति कम हो जायगी. न केवल उतनी मात्रा में जितनी मात्रा में कि उसने अपने प्रति अपना प्रेम बढ़ाया होगा, बल्कि उससे कहीं अधिक मात्रा में उसकी परसेवा की शक्ति कम हो जायगी। एक मनुष्य दूसरों को खिलाने के बजाय खुद बहुत अधिक खा लेता है। इस प्रकार वह बचा हुआ भोजन

दूसरों को देने की सम्भावना को ही कम नहीं करता। बल्कि, ज्यादा खा लेने से, दूसरों की मदद करने की अपनी शक्ति भी खो बैठता है।

दूसरों को केवल शब्दों द्वारा नहीं बल्कि वस्तुतः प्रेम करने के लिए मनुष्य को अपने से प्रेम करना छोड़ना होगा, केवल शब्दों द्वारा ही नहीं बल्कि वास्तव में भी। बहुत से उदाहरणों में होता यह है कि हम समझते हैं, हम दूसरों से प्रेम करते हैं। हम खुद भी ऐसा मान बैठते हैं और दूसरों को भी ऐसा ही यकीन दिलाते हैं, किन्तु वास्तव में दूसरों के प्रति हमारा प्रेम शब्दों तक ही सीमित होता है, जबकि हम अपने-आपको वस्तुतः प्रेम करते हैं। दूसरों को भोजन खिलाना या आश्रय देना हम भूल जाते हैं, किन्तु अपने लिए भोजन और आश्रय प्राप्त करना कभी नहीं भूलते। अतः दूसरों को सचमुच प्रेम करने के लिए हमको वस्तुतः अपने आपको प्रेम करना भूलना होगा, जिस प्रकार हम दूसरों को भोजन कराना और आश्रय देना भूल जाते हैं, उसी प्रकार हमको खुद को भोजन करना और सोना भूल जाना पड़ेगा।

हम विलासी जीवन बिताने के अभ्यस्त स्व-भोगी व्यक्ति के लिए कहते हैं कि वह अच्छा आदमी है और उत्तम जीवन बिताता है। किन्तु ऐसा व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष और चाहे उसमें चरित्र-शीलता के कितने ही अच्छे गुण, नम्रता, अच्छा स्वभाव आदि क्यों न हो, अच्छा आदमी नहीं हो सकता और न अच्छा जीवन बिता सकता है; जिस प्रकार कि चाकू को जब तक धार न लगाई जाय, वह बढ़िया से बढ़िया धात का और श्रेष्ठतम कारीगर के हाथों बना होने पर भी तेज नहीं हो सकता। अच्छा आदमी बनने और अच्छा जीवन बिताने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य जितना दूसरों से ग्रहण करे, उससे अधिक उन्हें लौटा दे। किन्तु स्व-भोगी मनुष्य जो विलासी जीवन का अभ्यस्त होता है, ऐसा ही नहीं कर सकता। इसका पहला कारण तो यह है कि हमेशा उसको अपने लिए खूब सारे पदार्थों की

जरूरत रहती है (यह उसकी स्वार्थपरता के कारण नहीं होता, बल्कि इसलिए होता है कि वह भोग-विलास का अभ्यस्त होता है और जिन पदार्थों का वह अभ्यस्त होता है उनसे वञ्चित रहना उसको कष्टकर प्रतीत होता है)। दूसरे, वह अन्य लोगों से कुछ प्राप्त करता है, उस सबका उपयोग करके अपने-आपको कमजोर और काम करने के अयोग्य बना लेता है और इस प्रकार दूसरों की सेवा करने में असमर्थ हो जाता है। एक स्वयं-भोगी मनुष्य, जो देर तक कोमल शय्या पर सोता है, गरिष्ठ और मिष्ट पदार्थों का सेवन करता है, हमेशा स्वच्छ और वायुमान के अनुकूल कपड़े पहनता है, कभी मेहनत का काम नहीं करता, वह कुछ नहीं कर सकता।

हम अपने झूठ और दूसरों के झूठ के इतने अभ्यस्त होते हैं और दूसरों के झूठ को न देखना हमारे लिए इतना सुविधाजनक होता है ताकि वे हमारे झूठ को न देख सकें और जो लोग सर्वथा असंयत जीवन बिताते हैं, वही जब गुण-सम्पन्नता और कभी-कभी पवित्रता का दावा करते हैं तो हमको जरा भी आश्चर्य नहीं होता और हम उनके दावों की सत्यता में शंका नहीं करते।

एक आदमी है जो स्प्रिंगदार पलंग पर सोता है। उस पर दो गद्दे, गद्दों पर दो नरम, स्वच्छ चादर और खोलीदार तकिये पड़े होते हैं। पलंग के पास ही एक चटाई पड़ी रहती है ताकि बिछौने पर से उतरने पर पाँव ठण्डे न हों, हालाँकि चप्पल जोड़ी भी पास ही धरी हुई रहती है। यहीं आवश्यक बर्तन रक्खे रहते हैं ताकि उसे मकान से बाहर न जाना पड़े। जो कुछ गन्दगी वह करता है, वह उठा ली जाती है और सब साफ-सुथरा बना दिया जाता है। खिड़कियों पर पर्दे पड़े रहते हैं ताकि धूप उसको जगा न सके। वह जब तक इच्छा होती है, सोता रहता है। इस सब के अलावा ऐसे उपाय किये जाते हैं, ताकि कमरा सर्दी में गरम और गर्मी में सर्द रहे और मक्खियों और कीट पतंगों के शोर से उसकी शान्ति भंग न हो। वह सोता होता है, तभी उसके हाथ मुंह धोने और कभी-कभी नहाने के

लिए ठण्डा और गर्म पानी और हजामत बनाने का सामान तैयार कर लिया जाता है। चाय और कहवा भी बना लिया जाता है, क्योंकि उठते ही स्फूर्तिदायक पेय की जरूरत होती है। बूट, जूते आदि जो पिछले दिन धूल से भर जाते हैं, पहले ही साफ कर लिये जाते हैं। धूल का एक कण भी उन पर बाकी नहीं रहता और वे कांच की भाँति चमकने लगते हैं। इसी प्रकार दूसरे पहनने के कपड़ों को भी, जो पिछले बिगड़ चुके होते हैं, साफ किया जाता है। इन कपड़ों की बनावट न केवल सर्दी और गर्मी, बल्कि बसन्त, पतझड़, वर्षा, शीत और ग्रीष्म आदि सभी ऋतुओं के अनुकूल होती है। साफ कपड़ा धोकर, कलफ लगा कर और इस्तरी चढ़ाकर तैयार रखा जाता है। बटन, बटन के छेद, आदि ठीक हैं या नहीं, इस बात को खास तौर पर नियुक्त लोग पहले ही देख लेते हैं।

यदि वह आदमी क्रियाशील हुआ तो वह प्रातःकाल जल्दी—७ बजे उठ जाता है। उसके जागने का समय उन लोगों से दो-तीन घण्टे बाद होता है जो उसके लिए यह सब तैयारियां करते रहते हैं। दिन में पहनने के कपड़ों और रात को ओढ़ने के कपड़ों के अलावा कपड़े पहनने के समय काम में आने वाले कपड़े और जूते अलग होते हैं। उठने के बाद वह अपनी सफाई करना शुरू करता है। वह कई प्रकार के ब्रुश, साबुन और भारी मात्रा में पानी का उपयोग करता है। (कुछ स्त्री-पुरुष अत्यधिक मात्रा में साबुन और पानी इस्तेमाल करने में खास गौरव अनुभव करते हैं।) इसके बाद वह पोशाक पहनता है, एक खास दर्पण के सामने बालों को संवारता है। यह कांच उन कांचों से भिन्न होता है जो उसके बंगले के हर कोने में टंगे हुए होते हैं। फिर वह अपनी आवश्यकता की चीजें चश्मा आदि लेता है, अलग-अलग जेबों में अलग-अलग चीजें रखता है। एक जेब में नाक साफ करने के लिए साफ-सुथरा जेबी रूमाल रखता है, दूसरी

में जंजीर वाली घड़ी डालता है, हालांकि हर कमरे में जहां भी उसे जाना होता है घड़ी मौजूद होती है, नोट, रुपया और रेजगी लेता है। (बहुधा रेजगी वह खास किस्म की डिब्बी में रखता है, ताकि आवश्यक सिक्का निकालने में उसे कष्ट न हो, चेक बुक भी वह साथ रखता है, अपने नाम के छपे हुए कार्ड भी उसके पास रहते हैं, ताकि उसे अपना नाम बताने का कष्ट न करना पड़े। पाकेट बुक और पेंसिल लेना भी वह नहीं भूलता। औरतों के नहाने-धोने का काम तो और भी पेचीदा होता है। उन्हें अपने आपको संवारने के लिए अनेक प्रकार की चीजों की आवश्यकता होती है।)

अन्त में साज शृंगार समाप्त हो जाता है और आम तौर पर खाने के साथ दिन की शुरुआत होती है। चाय और कहवा बहुत सारी शक्कर मिलाकर पिये जाते हैं। बढ़िया से बढ़िया सफेद आटे की बनी हुई रोटी मक्खन की भारी मात्रा के साथ खाई जाती है। कभी-कभी अण्डे, मांस आदि का भी सेवन किया जाता है। पुरुष इस बीच में अधिकतर सिगार या सिगरेट पीते और ताजा खरीद कर लाये हुए समाचार पत्र पढ़ते हैं। इसके बाद गन्दे और अव्यवस्थित बने कमरे को ठीक करने का भार दूसरों पर छोड़ कर दफ्तर या काम-धन्धे पर जाते हैं अथवा ऐसी गाड़ियों में निकल पड़ते हैं जो ऐसे लोगों को इधर-उधर ले जाने के लिए खास तौर पर बनाई जाती हैं। इसके बाद कत्ल किय जानवरों, पक्षियों और मछलियों का उपयोग होता है फिर दुपहर का भोजन होता है इसमें यदि वह बहुत साधारण हुआ तो भी तीन दौर होते हैं। फिर स्प्रिंगदार नरम आराम कुर्सियों मे बैठकर ताश खेला जाता है, संगीत सुना जाता है, नाटक देखा जाता है, पढ़ा जाता है और या बातचीत की जाती है। मोमबत्ती, गैस, और बिजली की केन्द्रित और आवरण युत रोशनी जलती रहती है। इसके बाद फिर चाय का, सायंकाल के खाने का और सोने का नम्बर आता है। बिछौना झाड़-झू कर

साफ कर दिया जाता है और बर्तनभी पुनः गन्दे किए जाने के लिए धो-धाकर रख दिए जाते हैं।

साधारण जिन्दगी बिताने वाले के दिन इस प्रकार गुजरते हैं। यदि वह अच्छे स्वभाव का हो और उसमें कोई ऐसी आदत न हो जो उसके इर्द-गिर्द रहने वालों को बुरी मालूम दे तो यह कहा जाता है कि यह आदमी उत्तम और सद्‌गुणी जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु उत्तम जीवन उसी मनुष्य का होता है जो दूसरों की भलाई करे, पर जो मनुष्य इस प्रकार रहने का अभ्यस्त हो क्या वह दूसरों का भला कर सकता है? मनुष्यों का भला करने के पहले उसे बुराई करना छोड़ना पड़ेगा। आप अन्दाज लगावें कि ऐसा मनुष्य, बहुधा अनजाने, दूसरों की कितनी हानि पहुंचाता है और आपको मालूम होगा कि वह भलाई करने से कोसों दूर है। वह जो बुराई करता है उससे छुटकारा पाने के लिए उसे अनेक वीरतापूर्ण काम करने पड़ेंगे, किन्तु अपने वासना-परिपूर्ण जीवन के कारण वह ऐसे काम करने में अति असमर्थ बन जाता है। वह अपना लम्बा कोट पहने फर्श पर नैतिक और शारीरिक दृष्टि से अधिक आराम की नींद सो सकता है और इस प्रकार गद्दे, स्प्रिंग और तकिये बनाने में जो श्रम और कष्ट होता है, उसकी बचत कर सकता है, कपड़े धोने वाली नौकरानी के श्रम की भी बचत कर सकता है जो बच्चे पैदा करने और उनका लालन पालन करने के बोझ के नीचे दबी होती है। जल्दी सोकर और जल्दी जाग कर वह खिड़कियों के पर्दों और लैम्प का खर्च बचा सकता है। जो कमीज वह दिन में पहनता है, उसी को पहने हुए रात में सो सकता है, फर्श पर नंगे पांव चल सकता है और टट्टी पेशाब के लिए चौक में जा सकता है। नल पर हाथ पांव धो सकता है। एक शब्द में कहें तो वह ठीक उन्हीं की तरह रह सकता है जो उसकी सेवा करते हैं और इस प्रकार इन सब कामों की बचत कर सकता है जो उसके लिए किए जाते हैं। उसके कपड़ों, बढ़िया

भोजन और मनोरंजन पर जो श्रम खर्च होता है, उसे वह बचा सकता है और वह यह जानता है कि किन परिस्थितियों में यह श्रम होता है, उसको करने में किस प्रकार मनुष्य नष्ट होते हैं, कष्ट उठाते हैं और बहुधा उन लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं जो उनकी गरीबी का लाभ उठाकर उनको काम करने के लिए विवश करते हैं।

ऐसी दशा में वह मनुष्य अपने भोग-विलासमय जीवन को तिलांजलि दिये बिना किस प्रकार दूसरों का भला कर सकता है, सद्जीवन व्यतीत कर सकता है ?

किन्तु दूसरे लोग हमारी नजरों में कैसे लगते हैं, इसका जिक्र हम छोड़ दें। हमको तो खुद अपनी ही ओर देखना और विचार करना चाहिए।

मैं इस एक ही बात को बार-बार दुहराऊंगा, चाहे लोग मेरे शब्दों के प्रति उदासीनता और विरोध-सूचक मौन का ही परिचय क्यों न दें ? एक नीतिमान मनुष्य, जो आराम की जिन्दगी गुजारता है, वह और मध्यम वर्ग का आदमी भी निश्चिन्त होकर नहीं बैठ सकता, (मैं उच्च वर्गों के व्यक्तियों का जिक्र नहीं करूंगा, जो अपनी मनमानी इच्छाओं को पूरा करने के लिए नित्य सैकड़ों दिनों के परिश्रम का फल हड़प कर जाते हैं।) क्योंकि वह जानता है कि जिन पदार्थों का वह उपभोग करता है, वे पददलित श्रमजीवियों के श्रम से तैयार होते हैं। ये श्रमजीवी, जो अज्ञानी, शराबी, व्यभिचारी और असभ्य जीव होते हैं, खानों, कारखानों और खेतों में काम करते हैं और उसके उपयोग में आने वाले पदार्थों का उत्पादन करते हैं।

इस क्षण जो मैं लिख रहा हूं और आप जो इसको पढ़ेंगे—आप कोई भी क्यों न हो—आप और मैं दोनों स्वास्थ्यकर, पर्याप्त और सम्भवतः विपुल और स्वादिष्ट भोजन पाते हैं। हमें सांस लेने के लिए शुद्ध और गर्म हवा मिलती है, हमारे पास सर्दी और गर्मी के

कपड़े हैं, मनोरंजन के विविध साधन उपलब्ध हैं और इन सबसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारे पास दिन में अवकाश है और रात में हम चैन की नींद सो सकते हैं। और यहीं, हमारी बगल में ऐसे श्रमजीवी लोग रहते हैं, जिन्हें न तो स्वास्थ्यकर भोजन मिलता है और न स्वास्थ्यकर मकान, न काफी कपड़े मिलते हैं और न मनोरंजन के साधन ही नसीब होते हैं, और जो न केवल अवकाश से ही बल्कि आराम से भी वंचित रहते हैं। वृद्ध, बालक और स्त्रियां जो श्रम, निद्रारहित रातों और रोग के कारण जर्जर हो चुके हैं, वे हमारे लिए आराम और विलास की वे चीजें तैयार करने में अपने जीवन खपा देते हैं जो उन्हें कभी नसीब नहीं होतीं और जो हमारे लिए आवश्यक नहीं बल्कि और जरूरी होती हैं। इसलिए एक नीतिमान मनुष्य जो ईसाई भी न हो लेकिन जो मानवी दृष्टि-कोण रखता हो या केवल न्याय की कद्र करता हो, अपने जीवन में जरूर ही परिवर्तन करना चाहेगा और ऐसी परिस्थितियों में तैयार होने वाली चीजों का उपयोग करना बन्द कर देगा।

यदि एक आदमी के दिल में वास्तव में उन लोगों के प्रति दया की भावना पैदा होती है, तो स्वभावतः वह पहली बात यह करेगा कि तम्बाकू पीना बन्द कर देगा, क्योंकि यदि वह तम्बाकू खरीदता और पीता रहेगा, तो वह तम्बाकू बनाने के काम को प्रोत्साहन देगा जिससे कि मनुष्यों का स्वास्थ्य नष्ट होता है। अन्न पैदा करने में जो कठोर परिश्रम करना पड़ता है, उसके बावजूद अगर मनुष्य रोटी खाना जारी रखता है तो इसकी वजह यह है कि वह श्रम की परिस्थितियों के बद-लने की प्रतीक्षा में, जो अनिवार्य है, उसे नहीं छोड़ सकता। लेकिन जो चीजें न केवल जरूरी ही नहीं होतीं, बल्कि ग़ैर-जरूरी होती हैं उनके बारे में इसके अलावा और कोई परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि यदि मैं अमुक चीजों को बनाने के काम में लगे हुए लोगों की हालत पर तरस खाता हूं तो मुझे किसी भी दशा में उन चीजों को काम में लेने

की आदत नहीं डालनी चाहिए ।

किन्तु आज कल लोग दूसरे ही ढंग की बहस करते हैं। वे तरह-तरह की और पेचीदा दलीलें गढ़ लेते हैं, किन्तु उस बात का जिक्र तक नहीं करते, जो हरेक साधारण आदमी को स्वभावतः समझ में आ जाती है। इन लोगों के अनुसार विलासात्मक पदार्थों से दूर रहने की कोई आवश्यकता नहीं। एक आदमी श्रमजीवियों की दशा के प्रति सहानुभूति रख सकता है, उनके पक्ष में भाषण दे सकता है, पुस्तकें लिख सकता है और साथ ही उस श्रम से लाभ भी उठाता रह सकता है जो उसकी जानकारी में उन्हें बर्बाद करता रहता है।

एक दलील तो यह है कि मैं उस श्रम से जो श्रम-जीवियों के लिए हानिकर है, लाभ उठा सकता हूं, कारण यदि मैं न उठाऊंगा तो दूसरे उठायेंगे। यह तो ऐसी ही दलील हुई कि शराब मेरे लिए हानिकर है, फिर भी मुझे उसे पीना चाहिए, क्योंकि वह खरीद ली गई है और यदि मैं उसे न पीऊंगा, तो दूसरे लोग उसे पीयेंगे।

दूसरी दलील यह है कि भोग-विलास की चीजें बनवाने से श्रम-जीवियों को ही लाभ पहुंचता है, कारण इस तरह हम उनके लिए पैसा अर्थात् आजीविका सुलभ करते हैं। मानों हमारे पास उन्हें आजीविका देने का इसके सिवा और कोई तरीका नहीं है कि हम उनसे ऐसी चीजें तैयार करावें जो उनके लिए तो हानिकर हों और हमारे लिए अनावश्यक।

किन्तु एक तीसरी दलील और है और यह आज कल बहुत प्रचलित है। मानों श्रम का बिभाजन हो चुका है और मनुष्य जिस भी काम में लगा हुआ है, चाहे वह सरकारी नौकर हो, पण्डा पुजारी हो, जमींदार हो, कारखानेदार हो, अथवा व्यापारी हो, वह इतना उपयोगी है कि उससे श्रमजीवियों के उस श्रम की पूरी तरह पूर्ति हो जाती है जिससे वह लाभ उठाता है। एक राज्य-सेवा करता है, दूसरा मन्दिर में पूजा करता है, तीसरा बिज्ञान की, चौथा कला की, और पांचवां

उन लोगों की सेवा करता है जो राज्य, विज्ञान और कला की सेवा करते हैं और सब को इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि वे मानव जाति को जो कुछ देते हैं, उसके द्वारा वे जो कुछ लेते हैं उसकी बिला शक पूर्ति हो जाती है। और यह आश्चर्य की बात है कि किस प्रकार अपने कार्यों में वृद्धि किये बिना और अपनी भोग विलास की जरूरतें बराबर बढ़ाते रह कर ये लोग यह मानते रह सकते हैं कि वे जो कुछ करते हैं, उससे वे जो कुछ उपयोग करते हैं उसकी पूर्ति हो जाती है।

किन्तु यदि आप इन लोगों का एक दूसरे के बारे में निर्णय सुनें तो आपको प्रतीत होगा कि हरेक व्यक्ति जितना उपयोग करता है उससे कहीं कम का अधिकारी है। सरकारी कर्मचारी कहते है कि जमींदार जितना खर्च करते हैं, उतनी कीमत का उनका काम नहीं होता। जमींदार व्यापारियों के बारे में और व्यापारी सरकारी कर्मचारियों के बारे में यही कहते हैं। किन्तु इससे उनको कुछ बाधा नहीं पहुंचती और वे लोगों को यह यकीन दिलाते रहते हैं कि उनमें से हरेक जितनी लोगों की सेवा करता है, उसी के अनुपात में दूसरे लोगों के श्रम से लाभ उठाता है। यह अदायगी काम से नहीं नापी जाती, किन्तु काल्पनिक काम का मूल्य अदायगी के रूप में आंका जाता है। इस तरह वे एक दूसरे को यकीन दिलाते हैं, किन्तु वे अपने दिल के भीतर अच्छी तरह से जानते हैं कि उनकी सारी दलीलों से भी उनका समर्थन नहीं होता, वे श्रमजीवियों के लिए आवश्यक नहीं हैं और वे जो इन लोगों के श्रम का लाभ उठाते हैं, वह श्रम विभाजन के कारण नहीं, बल्कि इसलिए है कि उनके पास ऐसा करने की शक्ति है और वे इतने बिगड़ चुके हैं कि उसके बिना उनका काम चलता ही नहीं।

यह सब गड़बड़ इसलिए पैदा होती है कि लोग यह समझ लेते हैं कि उत्तम जीवन के लिए आवश्यक प्रारम्भिक गुण हस्तगत किये बिना उत्तम जीवन बिताया जा सकता है। और यह पहला गुण है—आत्म-संयम!

[८]

आत्म-संयम के बिना न तो उत्तम जीवन कभी सम्भव हुआ है और न हो सकता है। आत्म-संयम से पृथक उत्तम जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। श्रेष्ठता की प्राप्ति का इसीसे प्रारम्भ होना चाहिए।

सद्गुणों का एक स्तम्भ होता है और यदि कोई उसके शिखर पर पहुंचना चाहे तो उसको नीचे-से नीचे वाली सीढ़ी से चढ़ना प्रारम्भ करना चाहिए, और यदि मनुष्य अन्य सद्गुणों को प्राप्त करना चाहे तो उसे पहला गुण आत्म-संयम अथवा सादगी को अपनाना चाहिए।

ईसाई धर्म में आत्म-त्याग की कल्पना में ही आत्म-संयम का समावेश कर लिया गया था, फिर भी अन्य गुणों का सिलसिला नहीं रहा, और आत्म-संयम के बिना कोई भी अन्य ईसाई सद्गुण प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसा इसलिए नहीं है कि किसी ने यह नियम गढ़ा है, बल्कि इसलिए है कि स्थिति मूलतः ऐसी ही है।

किंतु आत्म-संयम भी, जो कि सद्जीवन की पहली सीढ़ी है, एकदम नहीं बल्कि क्रमशः ही प्राप्त किया जा सकता है।

आत्म-संयम का अर्थ है मनुष्य का वासनाओं से मुक्त होना, वासनाओं को सीमित और सरल बनाना। किन्तु मनुष्य की वासनायें अनेक और विविध होती हैं और उनका सफलतापूर्वक सामना करने के लिए मनुष्य को मौलिक वासनाओं को, जिनके आधार पर कि जटिल वासनायें उत्पन्न होती हैं, पहले चुनौती देना चाहिए। उन जटिल वासनाओं को उसे पहले नहीं छेड़ना चाहिए जो मौलिक वासनाओं पर खड़ी होती हैं। कुछ तो जटिल वासनायें होती हैं जैसे कि शरीर को संवारना, खेल-कूद, मनोरंजन, गपशप, पराई चर्चा आदि आदि और कुछ मौलिक वासनायें होती हैं जैसे अति मात्रा में भोजन करना, आलस्य और काम-वासना आदि। और मनुष्य को इन वासनाओं का

प्रारम्भ से ही सामना करना चाहिए, जटिल वासनाओं का नहीं, बल्कि मौलिक वासनाओं का, और यह सामना भी एक निश्चित क्रम से करना चाहिए। और यह क्रम तथ्यों के स्वरूप और मानव-विवेक की परम्परा दोनों ही के द्वारा निर्धारित होता है।

जो मनुष्य अत्यधिक खाता है, वह आलस्य से नहीं लड़ सकता और अति-पेटु आलसी मनुष्य काम-वासना का कभी भी सामना नहीं कर सकता। इसलिए सभी नैतिक शिक्षाओं के अनुसार आत्म-संयम की दिशा में आगे बढ़ने के लिए मनुष्य को सबसे पहले जीभ की वासना से संघर्ष शुरू करना चाहिए, व्रत-उपवास से शुरूआत करनी चाहिए। किन्तु हमारे ज़माने में लोगों ने श्रेष्ठ जीवन प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रत्येक गम्भीर साधन को इतने अर्से से और इस पूरी तरह गंवा दिया है कि पहला सद्गुण—आत्म-संयम, जिसके बिना और कोई सद्गुण प्राप्त नहीं किया जा सकता, न केवल अनावश्यक समझा जाता है, बल्कि उस क्रम की भी उपेक्षा की जाती है जो इस प्रथम सद्गुण को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। व्रत-उपवासों को बिल्कुल भुला दिया जाता है अथवा मूर्खतापूर्ण अन्ध-विश्वास और सर्वथा अनावश्यक समझा जाता है।

यह सब होने पर भी आत्म-संयम सद्जीवन की पहली शर्त है, उसी प्रकार व्रत-उपवास संयमित जीवन की पहली शर्त है।

बिना व्रत-उपवास किये मनुष्य उत्तम बनने की इच्छा कर सकता है, श्रेष्ठता के स्वप्न देख सकता है, किन्तु व्रत-उपवास किये बिना श्रेष्ठ पुरुष बन सकना ठीक उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार कि मनुष्य अपने पांवों पर खड़े हुए बिना आगे नहीं बढ़ सकता।

व्रत-उपवास सद्जीवन की पहली अनिवार्य शर्त है, इसके विपरीत अति मात्रा में भोजन करना, हमेशा बुरे जीवन का पहला चिन्ह माना गया है और है भी। और दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे ज़माने के अधिकांश मनुष्यों में बहुत बड़ी मात्रा में यह दुर्गुण पाया जाता है।

आप अपन आस पास के और अपन समय के मनष्यो को देखिये आपको लटके हुए गालो और ठड्डियो वाले चेहरो पर मासल अगो और बढ़ हुए पेटो पर असयत जीवन के अमिट चिन्ह दिखाई देग। वस्तु स्थिति इससे अन्यथा हो भी नही सकती। अपन जीवन पर विचार कीजिए और इस बात पर भी विचार कीजिए कि हमारे समाज म अधिकतर आदमियो का क्या लक्ष्य ह और फिर अपन आप से प्रश्न पूछिए— इन बहुसख्यक लोगो की दिलचस्पी का मख्य विषय क्या ह? हम अपन वास्तविक हेतुओ को छिपान और झूठ बनावटी हेतु प्रकट करन के अभ्यस्त हो गय ह अत हमको यह भले ही आश्चर्यजनक प्रतीत हो किन्तु आपको ज्ञात होगा कि उनके जीवन म स्वाद की तृप्ति भोजन का आनन्द ही मख्य दिलचस्पी का विषय होता ह। गरीब से गरीब से लेकर अमीर से अमीर तक मेरे खयाल से हरेक के जीवन म भोजन का आनन्द ही मुख्य आनन्द माना जाता ह। गरीब श्रम जीवी लोगो को हम इसका अपवाद समझ सकते ह किंतु यह अपवाद उतन ही अंशो म होता ह जितन अशो म कि दरिद्रता उन्हे इस विकार के वशीभूत होन से दूर रखती ह। ज्योही उन्हे अवकाश और साधन मिल जाते ह त्योही वे उच्च वर्गो की नकल कर के स्वादिष्ट स स्वादिष्ट और मिष्ट पदार्थ प्राप्त करते ह और शक्ति भर खूब खाते और पीते है। जितना अधिक वे खाते ह उतना ही वे अपन आपको न केवल सुखी बल्कि मजबूत और तन्दुरुस्त खयाल करत ह। और उच्च वर्ग के लोग जिनकी भोजन क विषय म ठीक यही धारणा होती ह उनक इस विश्वास को पुष्ट करते ह। डाक्टर लोग कहते ह कि बहु-व्यय साध्य भोजन मांस सबसे अधिक स्वास्थ्यदायक होता ह और पढ़े लिख लोग भी डाक्टरो का अनुसरण कर क यह समझते ह कि सुस्वादु पोषक और सरलता से पच जाने वाला भोजन ही सुख और सन्तोष का कारण है हालांकि वे इस बात को छिपान की कोशिश करते हैं।

धनी आदमियो के जीवन की ओर देखिए उनकी बातचीत को

सुनिये। दर्शन, विज्ञान, कला, कविता, सम्पत्ति का विभाजन, लोक कल्याण, बालकों की शिक्षा आदि कैसे बड़े-बड़े विषयों की वे चर्चा करते हैं, किन्तु अधिकतर लोगों के लिए यह सब चर्चा कोई अर्थ नहीं रखती—काम के, असली काम के बीच अर्थात दुपहर के भोजन और सायंकाल के भोजन के बीच उन्हें जो समय मिलता है उसको व्यतीत करने के लिए वे ऐसी चर्चायें करते रहते हैं, जब कि उनका पेट पूरी तरह भरा होता है और उनके लिए और अधिक खा सकना असम्भव होता है। अधिकतर स्त्री पुरुषों की, खासकर प्रारम्भिक अवस्था के बाद, जीवित दिलचस्पी केवल इसी बात में [illegible] है कि कैसे खाया जाय, क्या खाया जाय तथा कब और कहां [illegible]।

कैसा भी गम्भीर समारोह हो, उत्सव का प्रसंग हो, पूजा-पाठ का अवसर हो, उद्घाटन समारोह हो, भोजन कार्य-क्रम अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता है।

यात्रा करने वाले लोगों को देखिए। इन लोगों के उदाहरण में यह बात खास तौर पर प्रकट हो जाती है। अजायबघर, वाचनालय, धारा सभा के भवन—यह सभी बड़े अच्छे स्थान हैं। किन्तु हम खाना कहाँ खायेंगे? सबसे बढ़िया खाना कहाँ मिलता है। जब लोग बढ़िया पोशाक पहने और सुगन्धित इत्र और तेल लगाये फूलों के गुलदस्तों से सजी हुई मेज के चारों ओर भोजन के लिए एकत्र होते हैं तो कितनी प्रसन्नता के साथ वे अपने हाथों [illegible] रगड़ते हैं और मुस्कराते हैं।

यदि हम अधिकतर लोगों के दिलों में झांक सकें, तो हमको उनकी सर्वोपरि इच्छा क्या ज्ञात होगी? नाश्ते और भोजन की भूख! बचपन से लगाकर बड़ी उम्र तक के मनुष्य के लिए सबसे कठोर दण्ड क्या होता है? खाने के लिए केवल रोटी और पीने के लिए पानी [illegible]। [illegible] से कारीगर हैं जो सबसे ऊंचे वेतन पाते हैं? रसोइये! घर की [illegible] दिलचस्पी का मुख्य विषय कौन सा होता है?

मध्यम वर्ग की स्त्रियों की बातचीत आम तौर पर किस विषय पर होती है ? यदि उच्च वर्गों के लोगों की बातचीत का झुकाव इसी ओर नहीं होता तो इसका यह कारण नहीं कि वे ज्यादा शिक्षित होते हैं अथवा अधिक उच्च विषयों की चर्चा में जुटे रहते हैं, बल्कि इसका कारण यह है कि उन्हें ऐसा नौकर या रसोइया मिला होता है जो भोजन सम्बन्धी चिन्ताओं से उन्हें मुक्त रखता है। किन्तु एक बार आप उन्हें इस सुविधा से वंचित कर दीजिए, तो आपको मालूम हो जायगा कि उन्हें किस बात की चिन्ता होगी। सारी चर्चा भोजन के विषय पर आकर समाप्त हो जाती है। बटेर की कीमत क्या है ? कहवा सबसे अच्छा कैसे बनाया जाता है, मीठी रोटियां कैसे पकाई जाती हैं आदि-आदि। नामकरण संस्कार के लिए, शादी या गमी के मौके पर, पूजा-पाठ के निमित्त, मित्र के आगमन या विदायगी के अवसर पर, यादगार दिवस मनाने के लिए, किसी महान् वैज्ञानिक, दार्शनिक या महात्मा की जन्म या मृत्यु-तिथि मनाने के लिए लोग इकट्ठे होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है मानो वे अत्यन्त उच्च उद्देश्यों में संलग्न हों। वे कहते ऐसा ही हैं, किन्तु यह तो केवल दम्भ होता है। वे सब इस बात को जानते हैं कि उक्त अवसरों पर अच्छा खाने और पीने को मिलेगा और इसी बात को लेकर वे मुख्यतः एकत्र होते हैं। ऐसे अवसरों के लिए कई दिन पहले से जानवरों की हत्या की जाती है; टोकरों खाने पीने का सामान खरीदा जाता है। रसोइये और उनके सहायक, भोजन के घर में काम करने वाले लड़के और लड़कियां, साफ कलफदार कुर्ते पहने और टोपियां लगाये हुए काम में जुटे रहते हैं। मुख्य रसोइये जिनको सात-सात और आठ-आठ-सौ मासिक वेतन मिलता है, हिदायतें देते रहते हैं। रसोइये भोजन के पदार्थों को काटने, गून्दने, भूनने, जमाने और संवारने में लगे रहते हैं। इतनी-ही गम्भीरता और महत्व के साथ समारोह का मुख्य व्यवस्थापक एक कलाकार की भांति व्यस्त रहता है, वह अनुमान लगाता

है, सोचता है और अपनी आँख से व्यवस्था करता रहता है। फूलों की देख-भाल करने का काम एक माली के सुपुर्द होता है। बर्तन माँजने और धोने वाली नौकरानियाँ अलग काम करती रहती हैं। आदमियों की फौज की फौज काम में जुटी रहती है, हजारों काम के दिनों की मेहनत का फल निगल लिया जाता है और यह सब इसलिए होता है कि लोग इकट्ठे हों और किसी विज्ञान के महापंडित या धर्मगुरु का चर्चा करें, या किसी मृतक मित्र की यादगार मनावें या किसी नवविवाहित दम्पत्ति का जीवन में प्रवेश करने के अवसर पर अभिनन्दन करें।

मध्यम और निम्न श्रेणियों में तो यह बात बिल्कुल प्रकट रूप में पाई जाती है कि प्रत्यक त्यौहार और शादी-गमी का उपयोग पेट-पूजा के लिए होता है। उनमें इन प्रसंगों का यही अर्थ समझा जाता है। लोगों के एकत्र होने का अर्थ भोजन का आनन्द लूटना होता है। यह तथ्य इतना व्यापक है कि यूनानी और फ्रांसीसी भाषा में 'शादी' और 'दावत' शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। किन्तु धनिक लोगों की उच्च श्रेणियों में, खासकर सुसंस्कृत लोगों में, जो एक अर्से से सम्पत्ति के स्वामी चले आये हैं, बड़े कौशल के साथ इस बात को छिपाया जाता है और ऐसा प्रकट किया जाता है कि भोजन गौण विषय है और केवल दिखावे के लिए आवश्यक होता है। और यह बहाना आसान भी होता है, कारण अधिकतर उदाहरणों में अतिथि लोग सच्चे अर्थों में तृप्त होते हैं, वे कभी भी भूखे नहीं होते।

वे यह दम्भ करते हैं कि भोजन उनके लिए जरूरी नहीं है, बल्कि एक बोझ है, किन्तु यह झूठ है। भोजन की बढ़िया तश्तरियों के बजाय, रोटी और पानी का जिक्र छोड़िए, आप उन्हें मामूली पकौड़ियाँ या अरारोट का पानी या इसी किस्म की अन्य खाने की चीजें देकर देखिये, तो कैसा तूफान उठ खड़ा होगा और किस प्रकार वास्तविक सत्य प्रकट हो जायगा अर्थात् यह मालूम हो जायगा कि एकत्रित लोगों की दिलचस्पी का मुख्य विषय पेट-पूजा है, न कि वह जो प्रकट किया जाता है।

लोग क्या बेचते हैं, इसपर नजर डालिए। नगर में जाकर देखिये लोग क्या खरीदते हैं। साज-शृंगार की चीजें और पेट-पूजा की सामग्री। और वास्तव में इसके सिवा अन्यथा हो ही नहीं सकता। भोजन के बारे में सोचना तभी बन्द हो सकता है, इस विकार को तभी वश में किया जा सकता है, जब मनुष्य आवश्यकता पूर्ति के अलावा कुछ न खावे। किन्तु जब मनुष्य आवश्यक हो जाने पर ही अर्थात् पेट ठसाठस भर चुकने के बाद ही खाना बन्द करता है। तो हालात जैसे हैं उससे अन्यथा नहीं हो सकते। यदि भोजन के आनन्द का उपयोग करना चाहे, यदि इस आनन्द के प्रति उनके मन में गहरी आसक्ति हो यदि वे इसको अच्छा समझें (जैसा कि इस जमाने के अधिकतर आदमी समझते हैं, चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित) तो इस आनन्द के विस्तार की कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती, उसे चाहे जितना बढ़ाया जा सकता है। आवश्यकता पूर्ति की सीमा हो सकती है किन्तु आनन्द की कोई सीमा नहीं। हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रोटी, चावल, दाल और शाक-भाजी जरूरी और काफी हो सकते हैं, किन्तु आनन्द की पूर्ति के लिए नाना भाँति के व्यञ्जन भी काफी नहीं हो सकते।

रोटी आवश्यक और काफी खाद्य है। (यह इस बात से सिद्ध है कि केवल रोटी खाकर करोड़ों आदमी मजबूत, क्रियाशील, तन्दुरुस्त रहते हैं और कठोर परिश्रम करते हैं।) किन्तु रोटी को किसी स्वादिष्ट पदार्थ के साथ खाने में ज्यादा आनन्द आता है। रोटी को यदि मांस के उबले हुए पानी में भिगो दिया जाय तो वह अच्छी लगती है। यदि इस पानी में कुछ तरकारी या तरकारियाँ मिला दी जायें तो और भी अच्छा रहता है। मांस खाने में अच्छा लगता है, किन्तु मांस उबाला हुआ नहीं, बल्कि भूना हुआ अच्छा होता है। मक्खन के साथ वह और भी अच्छा लगता है। मांस के कुछ खास हिस्से विशेप पसन्द किये जाते हैं। इसके साथ तरकारियाँ और दाल वगैरा और शामिल कर लीजिए। फिर शराब भी पीजिए, लाल शराब ज्यादा अच्छी होती है। मनुष्य

को इससे अधिक कुछ न चाहिए, किन्तु यदि शोरबे में अच्छी तरह भीगी हुई मछली मिल जाय तो सफेद शराब के साथ वह भी निगली जा सकती है। अब तो ऐसा मालूम देगा मानों आदमी और कुछ न खा सकेगा चाहे कितना ही बढ़िया या स्वादिष्ट पदार्थ सामने क्यों न आ जाय। किन्तु एक मीठी तश्तरी फिर भी पेट में डाल ली जा सकती है। गर्मियों में तरह-तरह के बर्फ और सर्दियों में उबले हुए फल और सुरक्षित पदार्थ वग़ैरा-वग़ैरा। यह हुआ हमारा भोजन, साधारण भोजन। ऐसे भोजन के आनन्द में भारी वृद्धि की जा सकती है। भोजन के पहले उत्तेजक नाश्ते किये जा सकते हैं, दुपहरी की जा सकती है, स्वादिष्ट पदार्थों के भिन्न-भिन्न सम्मिश्रण तैयार किये जा सकते हैं। भोजन के कमरे को फूलों से तथा अन्य प्रकार सजाया जा सकता है। भोजन के समय संगीत की व्यवस्था की जा सकती है।

और विचित्रता यह है कि जो आदमी इस प्रकार नित्य ठाठदार भोजन करते हैं, उन्हें बड़ी सरलता के साथ यह यक़ीन दिलाया जाता है कि वे फिर भी नैतिक जावन बिता सकते हैं।

[९]

व्रत-उपवास उत्तम जीवन की एक आवश्यक शर्त है, किन्तु सामान्य आत्म-संयम की भाँति व्रत-उपवास करने में भी यह प्रश्न पैदा होता है कि प्रारम्भ हमको कहां से करना चाहिए? उपवास किस प्रकार किया जाय? कितनी बार खाया जाय? क्या खाया जाय? क्या न खाया जाय? और जिस प्रकार हम एक क्रम का पालन किये बिना कोई काम नहीं कर सकते, उसी प्रकार हम यह जाने बिना कि भोजन के विषय में आत्म-संयम का प्रारम्भ कहाँ से किया जाना चाहिए, हम उपवास नहीं कर सकते।

उपवास! उपवास-विधि का विश्लेषण और उपवास का प्रारम्भ

कहाँ से किया जाय ? यह खयाल ही अधिकांश लोगों को हास्यास्पद और अटपटा प्रतीत होता है।

मुझे याद पड़ता है कि एक पादरी ने, जिसे अपनी मौलिकता पर अभिमान था, संन्यासियों के वैराग्य की टीका करते हुए मुझसे कहा था कि "हमारा ईसाई धर्म व्रत-उपवासों और कष्ट-सहन का धर्म नहीं है, बल्कि गो-मांस सेवी धर्म है। कहाँ तो सद्‌गुणों का समुच्चय ईसाई धर्म और कहाँ गो-मांस सेवन !"

अन्धकार के एक लम्बे युग के दौरान में और हर प्रकार के पथ प्रदर्शन से वंचित रहने के कारण हमारे जीवन में इतने अटपटे और अनैतिक विचार घुस गये हैं (खासकर उत्तम जीवन के निचले क्षेत्र में भोजन के विषय में, जिसके बारे में किसी ने ध्यान नहीं दिया) कि इस जमाने में हम धार्मिक जीवन और गो-मांस सेवन में कितना भारी अन्तर है, यह भी नहीं समझ सकते।

धर्म और गो-मांस सेवन की एक पंक्ति बिठाये जाने पर हमें ज़रा भी रोमांच नहीं होता, इसका केवल यही कारण है कि हम एक विचित्र परिस्थिति के शिकार बन चुके है। हमारी आँखें हैं, किंतु हम देखते नहीं, हमारे कान हैं, लेकिन हम सुनते नहीं। कोई ऐसी दुर्गन्धि नहीं, ऐसी आवाज नहीं, ऐसी वीभत्सता नहीं कि जिसका मनुष्य इतना अभ्यस्त न हो जाय कि वह चूं भी न करे, हालांकि एक अनभ्यस्त मनुष्य को वह तुरंत खटकेगा। नैतिक क्षेत्र में भी ठीक यही बात होती है। धर्म और नैतिकता और गो-मांस सेवन का मेल यही सिद्ध करता है।

कुछ दिनों पहले मैंने टुला नगर के कसाई-घर को देखा। यह नये और सुधरे हुए तरीके पर बनाया गया है ताकि पशुओं को कम से कम कष्ट हो। वह शुक्रवार का दिन था। बहुत से पशु वहाँ मौजूद थे।

'भोजन विज्ञान' नाम की बढ़िया पुस्तक को पढ़ने से बहुत पहले ही मैं किसी कसाई घर को देखना चाहता था, ताकि मैं अपनी आँखों से उस प्रश्न की असलियत को देख सकूं, जो निरामिष भोजन की चर्चा के

समय उठाया जाता है। किंतु पहले ना मुझे ऐसा करने में लज्जा अनुभव हुई, क्योंकि जब आपको यह मालूम होना है कि अमुक स्थान पर पशुओं को काटा जाता है और आप उस कष्ट-कर कार्य को नहीं रोक सकते, तो उस उत्पीड़न को देखने में आपको लज्जा महसूस हुए बिना नहीं रह सकती। अतः मैं कसाई-घर को देखने की उतनी इच्छा को टालता रहा।

किंतु कुछ दिनों पहले मुझे सड़क पर एक कसाई मिला जो अपने घर से टुला लौट रहा था। वह कुशल कसाई न था और उसका काम छुरा भोंकना मात्र था। मैंने उससे पूछा कि तुम जो पशुओं को मारते हो, उस पर तुमको क्या अफसोस नहीं होता? उसने मुझे वही जवाब दिया जो आम तौर पर दिया जाता है। "मैं क्या अफसोस करूं? यह तो आवश्यक है।' पर जब मैंने उससे कहा कि मांस खाना जरूरी नहीं है, बल्कि एक विलासिता है तो वह मुझसे सहमत हो गया और उसने स्वीकार किया कि उसे उन जानवरों के लिए अफसोस है। 'लेकिन मैं करूं क्या? मुझे अपनी रोटी तो कमाना ही पड़ेगी। पहले मुझे मारने में डर लगता था। मेरे पिता ने तो अपनी सारी उम्र एक मुर्गी के बच्चे तक को हलाल नहीं किया।' अधिकतर रूसी प्राण हरण करना पसन्द नहीं करते, उन्हें दया आ जाती है और दया की भावना को वे 'डर' शब्द से प्रकट करते हैं। यह आदमी भी डरता था, किंतु अब नहीं डरता। उसने मुझे बताया कि कसाई घर में अधिककाम शुक्रवार को होता है और शाम पड़े देर तक होता रहता है।

बहुत दिन हुए, जब मेरी एक निवृत्त हुए सिपाही से, जो कसाई का काम करता था, बातचीत हुई। जब मैंने उससे कहा कि मारना एक निष्ठुर काम है तो उसे आश्चर्य हुआ और उसने वही प्रचलित बात दुहराई कि यह तो विधि-विहित कार्य है। किंतु बाद में वह मुझसे सहमत हो गया और बोला—"खास तौर पर जब वे शान्त होते हैं, पालतू पशु होते हैं। वे बिचारे हम पर विश्वास कर के आते हैं। यह दृश्य बड़ा

करुणाजनक होता है।'

यह भयंकर स्थिति है। पशुओं की पीड़ा और मौत नहीं, बल्कि यह बात भयंकर है कि मनुष्य अकारण अपनी सर्वोच्च आत्मिक शक्ति--अपने ही जैसे जीवों के प्रति दया और सहानुभूति की भावना को कुचल देता है और अपनी भावनाओं की अवहेलना कर के निर्दयी बन जाता है। और मनुष्य के दिल में किसी के प्राण न लेने के धार्मिक विधान ने कितना गहरा घर किया हुआ है।

एक बार जब मैं मास्को से गाँव के लिए पैदल रवाना हुआ, (टालस्टाय अक्सर पैदल यात्रा किया करते थे।---अनुवादक) तो रास्ते में कुछ गाड़ीवानों ने, जो पास के जंगल में ईंधन लेने जा रहे थे, मुझे गाड़ी पर बैठ जाने के लिए कहा। मैं पहले नम्बर की गाड़ी में बैठा हुआ था। उसका गाड़ीवान एक मजबूत सुर्ख रंग का देहाती आदमी था। ऐसा मालूम होता था कि वह शराब पीता होगा. जब हम एक गाँव में दाखिल हुए तो हमने देखा कि एक मोटे ताजे, नंगे, गुलाबी रंग के सुअर को कत्ल करने के लिए चौक में से घसीट कर ले जाया जा रहा है। वह बड़ी बुरी तरह चीख और चिल्ला रहा था और उसकी चीख-चिल्लाहट आदमी-सी मालूम देती थी। हमारे देखते-देखते लोग उसे मारने लगे। एक आदमी ने उसके गले में चाकू घुसेड़ दिया। सुअर और भी जोर और तीखी आवाज से चीखने लगा, आदमियों के पंजे से अपने आपको को छुड़ा कर खून से लथपथ हुआ भाग निकला। मेरी नेत्र-शक्ति कमजोर होने के कारण मैं सारी बातें न देख सका। मैंने सिर्फ सूअर का मनुष्य जैसा गुलाबी बदन देखा और उसकी विवश चीख-पुकार सुनी। किंतु गाड़ीवान ने सब बातों को बड़े ध्यानपूर्वक देखा। लोगों ने सूअर को पकड़ा, दबोचा और उसका गला काट डाला। जब सुअर की चीख-पुकार शांत हो गई तो गाड़ीवान ने एक लम्बा सांस ली। वह बोला---"क्या मनुष्य को ऐसी बातों के लिए सचमुच जवाब नहीं देना पड़ता ?"

हिंसा के विरुद्ध मनुष्य की भावना इतनी तीव्र है। किंतु उदाहरण से, लाभवृत्ति को प्रोत्साहन मिलने से, हिंसा परमात्मा द्वारा अनुमोदित मानी जाने के कारण और सबसे अधिक स्वभाववश लोगों की यह स्वाभाविक भावना पूर्णतः लुप्त हो जाती है।

शुक्रवार को मैंने टुला जाने का निर्णय किया और अपने एक विनीत दयालु परिचित से साथ चलने के लिए कहा।

'हाँ, मैंने सुना है कि कसाई-घर की व्यवस्था अच्छी है और उसको देखने जाने का मेरा इरादा भी रहा है। किंतु यदि वहाँ जानवरों को कत्ल किया जा रहा होगा तो मैं भीतर न जाऊंगा।'

'क्यों नहीं? मैं यही तो देखना चाहता हूं। यदि हम मांस खाते हैं तो जानवरों को तो मारा ही जायगा।'

'नहीं, नहीं, मैं नहीं जा सकता।'

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि मेरा यह परिचित शिकारी था और खुद पशु-पक्षियों का शिकार करता था।

हाँ, तो हम कसाई घर पहुंचे। अहाते में घुसते ही हमको भारी वमनकारक, तीखी गंध का अनुभव हुआ। बढ़ई के सरेस या सरेस के वार्निश जैसी यह गंध थी। इमारत लाल ईंटों की थी, बहुत बड़ी थी, उसमें महराबदार छत और ऊंची-ऊंची चिमनियाँ थीं। हम फाटक के भीतर दाखिल हुए। दाहिने हाथ की ओर एक विशाल बाड़ा था—कोई तीन चौथाई एकड़ होगा। सप्ताह में दो बार जानवर बिक्री के लिए यहाँ लाये जाते हैं। इस बाड़े के पास ही द्वार-रक्षक का कमरा था। बाईं ओर वे कमरे थे, जिनके महराबदार दर्वाजे थे, ढालू फर्श कोलतार की थी और लाशों को हटाने तथा टाँगने के साधन बने हुए थे। द्वार-रक्षक के कमरे की दीवार के सामने बेंच पर आधे दर्जन कसाई बैठे हुए थे। उनके कपड़े खून से भरे हुए थे। उनकी चढ़ी हुई बाहों से पता चलता था कि उनके बाजुओं पर भी खून के छींटे पड़े हुए हैं। उनको अपना काम खत्म किये आधा घंटा हो गया था, इसलिए

हम उस दिन केवल खाली कमरों को ही देख सके। हालांकि ये कमरे दोनों ओर से खुले हुए थे, किंतु उनमें गरम खून की तीखी गंध फैली हुई थी, फर्श भूरे रंग का था और चमक रहा था। उसकी दरारों में काला खून जमा था।

एक कसाई ने पशुओं के कत्ल किये जाने की क्रिया हमको समझाई और वह स्थान भी बताया जहां पशुओं को कत्ल किया जाता था। मैं उसकी बात को अच्छी तरह न समझ पाया और पशुओं के कत्ल किए जाने के बारे में मैं गलत किंतु भयंकर खयाल बना बैठा। मैंने खयाल किया, जैसा कि अक्सर होता है, कि कल्पना की अपेक्षा वस्तुस्थिति का मुझ पर कम गहरा असर पड़ेगा। किंतु मेरा यह खयाल ठीक न था।

अगली बार जब मैं कसाई-घर देखने गया तो समय पर पहुंच गया। उस दिन शुक्रवार था और वह जून का महीना था। जब मैं पहली मर्तबा कसाई-घर आया, उस समय की अपेक्षा इस समय सरेस और रक्त की गंध अधिक तीव्र और तीखी थी। काम पूरे जोरों पर था। रेतीला चौक जानवरों से भरा हुआ था और सब जानवर बाड़ों से हांक कर कत्लगाह के नजदीक ले आये गये थे।

अहाते के बाहर सड़क पर गाड़ियाँ पड़ी हुईं थीं, जिनसे बैलों, बछड़ों और गायों को बांधा हुआ था। दूसरी गाड़ियों को खींचने के लिए अच्छे घोड़े थे। इन गाड़ियों में जिंदा बछड़े भरे हुए थे। इनके सिर नीचे लटके हुए थे और इधर से उधर हिल रहे थे। ये गाड़ियां एक के बाद एक आ रही थीं और खाली की जा रही थीं। ऐसी कुछ गाड़ियाँ बैलों की लाशों को लिए हुए वापस लौट रही थीं। इनके कांपते हुए पैर बाहर छटपटा रहे थे। उनके सिर और चमकते हुए लाल फेफड़े और भूरे रंग के यकृत भी नजर आ रहे थे। अहाते के पास जानवरों को बेचने वालों के घोड़े खड़े थे। बेचनेवाले खुद लम्बे कोट पहने हुए और हाथों में चाबुक तथा कोड़े लिए हुए चौक में इधर उधर घूम रहे

थें। वे या तो एक ही मालिक के जानवरों पर कोलतार से निशान लगा रहे थे, या सौदा कर रहे थे, या बैलों और सांड़ों को बड़े चौक से कत्ल-गाह को जाने वाले अहातों में हांक कर ले जा रहे थे। ये लोग प्रकटतः रुपये पैसे का हिसाब लगाने और जोड़-बाकी करने में व्यस्त थे और इन जानवरों को मारना ठीक है या नहीं, यह खयाल उनसे उतना ही दूर था, जितना कि यह प्रश्न कि कमरों की फर्श पर फैलने वाले रक्त का रासायनिक रूप कैसा होता है।

चौक में कसाई नजर न आते थे। वे कमरों के भीतर काम कर रहे थे। उस दिन करीब सौ पशुओं के सिर धड़ से जुदा किये गये। मैं एक कमरे के भीतर घुसने जा ही रहा था कि मुझे दर्वाजे पर रुक जाना पड़ा। एक कारण तो यह हुआ कि कमरा लाशों से पटा पड़ा था। इन लाशों को हटाया जा रहा था। दूसरे फर्श पर खून भी बह रहा था और ऊपर से भी टपक रहा था। सबके सब कसाई जो वहाँ मौजूद थे खून से भरे हुए थे और मैं भी यदि भीतर दाखिल हो गया होता तो खून से भरे बिना न रहता। एक लटकी हुई लाश को नीचे उतारा जा रहा था, दूसरी दर्वाजे की ओर ले जाई जा रही थी, एक तीसरा कत्लशुदा बैल अपनी सफेद टाँगों को ऊपर उठाये हुए पड़ा था और एक कसाई मज-बूत हाथ से उसकी तनी हुई खाल को उतार रहा था।

जिस दर्वाजे पर मैं खड़ा था, उसके सामने वाले दर्वाजे के भीतर एक बड़े लाल रंग के मोटे ताजे बैल को ले जाया गया। दो आदमी उसको घसीट रहे थे, और वह मुश्किल से भीतर घुसा होगा कि मैंने एक कसाई को बैल की गर्दन के ऊपर छुरा उठा कर भोंकते हुए देखा। बैल, मानों उसकी चारो टाँगों ने एकाएक जवाब दे दिया हो, पेट के बल जोर से गिर पड़ा और अपनी पिछली टाँगों और सारे पिछले हिस्से को छुड़ाने की कोशिश करने लगा। दूसरा कसाई फौरन बैल पर तड़-फड़ाती हुई टांगों के सामने की ओर से झपटा, उसके सींगों को पकड़ लिया और उसके सिर को मरोड़ कर जमीन पर रख दिया। इसी दूसरे

कसाई ने छुरे से उसके गले को काट डाला। सिर के नीचे मैले लाल खून का फव्वारा फूट निकला, जिसे खून से लथपथ हुए एक लड़के ने टिन के पीपे में भर लिया। जब तक यह सब होता रहा तब तक बैल लगातार अपने सिर को मरोड़ता रहा—मानों वह उठने की कोशिश कर रहा हो—और अपना चारों टाँगों को हवा में हिलाता रहा। टिन बर्तन जल्दी से भरता जा रहा था, किंतु बैल अब भी जीवित था। उसका पेट जोर-जोर से सास ले रहा था। उसके अगले और पिछले पाँव इतनी तेजी से फड़फड़ा रहे थे कि कसाइयों ने अलग खड़े रहने में ही खैर समझी। जब एक बर्तन भर चुका तो लड़का उसे अपने सिर पर रख कर उठा ले गया। इस बीच दूसरे लड़के ने एक और बर्तन बैल के सिर के पास रख दिया। यह बर्तन भी तेजी के साथ भरने लगा। किंतु फिर भी बैल अपने अगली [illegible] और पिछली टाँगों को पछाड़ रहा था।

जब खून गिरना बन्द हो गया तो कसाई ने जानवर का सिर उठाया और खाल उतारने लगा। बैल अब भी मरोड़े खा रहा था। उसका सिर खाल उतार लिये जाने के बाद सुर्ख नजर आता था और बीच-बीच में सफेद नसें दिखाई दे रही थीं। जिस जगह कसाई ने उसे टिका दिया, वहीं वह पड़ा रहा। दोनों तरफ खाल लटक रही थी। किंतु फिर भी बैल का मरोड़े खाना बन्द न हुआ। तब एक दूसरे कसाई ने उसकी एक टाँग पकड़ कर तोड़ डाली और काट कर जुदा कर दी। शेष टाँगों और पेट में मरोड़े फिर भी जारी थे। दूसरी टांगें भी काट कर अलग फेंक दी गई जहाँ उसी मालिक के दूसरे बैलों की टाँगे पड़ी हुई थीं। इनके बाद लाश को घसीट कर टाँगने की जगह पर ले जाया गया और टाँग दिया गया। अब मरोड़े बन्द हो चुके थे।

इस प्रकार मैंने दर्वाजे से दूसरे, तीसरे, चौथे बैल का हाल देखा। हर बैल का समान दशा होती थी। कटी हुई जीभ सहित सिर काट लिया जाता था और कटे हुए अंग उसी प्रकार मरोड़े खाते रहते थे।

अन्तर था तो केवल यही कि कसाई हमेशा एकदम वार नहीं करता था जिससे कि जानवर गिर पड़े। कभी-कभी निशाना चूक भी जाता था। जब ऐसा होता तो बैल उछलता, चीखता और खून से लथपथ हुआ भागने की कोशिश करता। किन्तु उस दशा मे उसका सिर एक डण्डे के नीचे खींच लिया जाता, दुबारा वार किया जाता और वह गिर पड़ता।

बाद में मै उस दर्वाजे के भीतर घुसा, जहाँ बैलों को ले जाया जाता था। यहाँ भी मैंने वही बात देखी। और चूंकि यहाँ मै नजदीक से देख सका, इसलिए ज्यादा साफ-साफ देख पाया। हर बार जब भी अहाते मे किसी बैल को पकडा जाता और उसे सीगों पर रस्सी बाध कर आगे खीचा जाता, तथा वह खून की गंध से भडक कर आगे बढ़ने से इन्कार कर देता और कभी-कभी चीखने लगता और पीछे हट आता। दो आदमी सारा जोर लगा कर भी उसको आगे न घसीट पाते, अतः कोई कसाई हर बार घूम कर जाता, जानवर की पूंछ पकड़ता और उसको इतने जोर से मरोड़ता कि पूंछ की हड्डी कडकड़ा उठती और बैल आगे बढ जाता।

जब कसाई लोग एक मालिक के जानवर का खात्मा कर लेते तो दूसरे मालिक के जानवरों का नम्बर आता। दूसरे झुण्ड मे पहला जानवर बैल न था, बल्कि सांड था, बढ़िया किस्म का, अच्छी नस्ल का, टाँगों पर सफेद धब्बे थे, जवान था, गठीले शरीर वाला और जीवन से भरा-पूरा। उसे आगे घसीटा गया, किन्तु उसने अपना सिर नीचे झुका लिया और दृढतापूर्वक मुकाबिला किया। तब जो कसाई उसके पीछे आ रहा था, उसने उसकी पूंछ पकड़ी, जिस प्रकार कि एक इंजिन ड्राइवर सीटी के हत्थे को पकड़ता है, उसको मरोडा, पूंछ की हड्डी कड़कड़ाई और बैल आगे की ओर झपटा और जो लोग रस्सी पकड़े हुए थे वे अस्तव्यस्त हो गये। वह फिर रुक गया, अपनी काली आँखों से अगल-बगल देखने लगा। उसकी आँखों के सफेद हिस्सों मे खून उतर आया था। किंतु पूंछ फिर कड़कड़ाई गई और बैल आगे झपटा और निर्दिष्ट

स्थान पर पहुंच गया। वार करने वाला आगे आया, निशाना साधा और प्रहार किया। किंतु निशाना चूक गया। साँड उछला, सिर को धड़धड़ाया, चीखा और खून से लथपथ हुआ रस्सी तुड़ाकर पीछे भाग निकला। दर्वाजे पर खड़े हुए आदमी दूर जा खड़े हुए। किंतु अनुभवी कसाइयों ने खतरों का मुकाबिला करने के अभ्यस्त आदमियों के समान सूझसे काम ले कर जल्दी से रस्सा पकड़ लिया, पुनः पूंछ मरोड़ने की क्रिया दुहराई गई और बैल कत्लगाह में जा पहुंचा। वहाँ उसको खींच कर डण्डे के नीचे ले जाया गया, जहाँ से वह फिर न बच सका। वार करने वाले ने ठीक उस जगह निशाना ताका जहाँ बाल तारे की भांति अलग नजर आते हे और हालाँकि खून बह रहा था, फिर भी उसने वह जगह मालूम कर ली और प्रहार किया। वह सुन्दर जानवर जो जीवन से भरा हुआ था लड़खड़ा कर गिर पड़ा। जब तक खून इकठ्ठा किया जाता रहा और सिर की खाल उतारी जाती रही, तब तक उसका सिर और पाँव मरोड़े खाते रहे।

कसाई सिर की खाल उतारते-उतारते बड़बड़ा रहा था—"अभागा दुष्ट सीधा भी तो नहीं गिरा।"

पाँच मिनिट में सिर की खाल उतार ली गई। सिर सुर्ख के बजाय काला पड़ गया। पाँच मिनिट पहले जो आँखें इस क़दर भव्य प्रकाश से चमक रही थीं, अब स्थिर और जड़ हो गईं।

इसके बाद में उस हिस्से में गया जहाँ छोटे जानवर कत्ल किये जाते थे। यह बहुत बड़ा कमरा था, फर्श कोलतार का था। कमरे में पीठ वाली मेजें पड़ी हुई थीं। इन पर भेड़ों और बछड़ों को कत्ल किया जाता था। यहाँ काम पहले ही खत्म हो चुका था। इस लम्बे कमरे में, जहाँ खून की गंध भरी हुई थी, सिर्फ दो कसाई मौजूद थे। एक तो मुर्दा भेड़ के बच्चे की टांग में हवा भर रहा था और फूले हुए पेट को अपने हाथ से थपथपा रहा था। दूसरा कसाई नौजवान था। उसके पहनने के कपड़े खून से खराब हो गये थे। वह एक मुड़ी हुई

सिगरेट पी रहा था। उनके अलावा इस लम्बे अंधेरे और तीव्र गंध से परिपूर्ण कमरे में और कोई न था। मेरे बाद कमरे में एक आदमी और दाखिल हुआ। सूरत शकल से वह निवृत्त सिपाही प्रतीत होता था। वह एक-डेढ़ साल का बिना खस्सी किया हुआ भेड़ का बच्चा लाया। उसका रंग काला था और गर्दन पर सफेद निशान थे। उसकी टाँगें बंधी हुई थीं। इस जानवर को एक मेज पर रखा, जैसे बिस्तर पर सुलाते हों। बुड्ढे सिपाही ने कसाइयों से अभिवादन किया। ऐसा प्रतीत होता था कि उसकी इनसे पहले की पहचान रही होगी। वह उनसे पूछने लगा कि उनका मालिक उन्हें कब छुट्टी देता है। जो कसाई सिगरेट पी रहा था, चाकू लिए हुए आगे बढ़ा, मेज के कोने पर उसने धार लगाई और जवाब दिया कि छुट्टियों के दिन उन्हें काम नहीं करना पड़ता। जीवित भेड़ का बच्चा फूले हुए मुर्दा भेड़ के बच्चे के समान निश्चल पड़ा हुआ था। अन्तर केवल इतना था कि वह अपनी छोटी दुम को जल्दी-जल्दी हिला रहा था और उसकी बगलें मामूली से अधिक तेजी के साथ फूल और बैठ रही थीं। सिपाही ने उसके उठे हुए सिर को धीरे से बिना किसी प्रयत्न के नीचे दबा दिया। कसाई ने, जो अब भी बातचीत कर रहा था, अपने बाँयें हाथ से भेड़ के बच्चे का सिर पकड़ा और उसका सिर काट डाला। भेड़ का बच्चा तड़फड़ाया और उसकी छोटी दुम सख्त हुई और हिलना बन्द हो गया। कसाई खून गिरने की प्रतीक्षा में बुझी हुई सिगरेट को फिर से जलाने लगा। खून बह चला और भेड़ का बच्चा मरोड़े खाने लगा। बातचीत बिना किसी बाधा के जारी थी। सारा दृश्य वीभत्स था।

और उन मुर्गियों और मुर्गों के बच्चों का क्या जिक्र किया जाय जो अस्त-व्यस्त दशा में अपने पंखों को फड़फड़ाते हुए इधर-उधर डोलते रहते हैं और जिनका नित्य हजारों रसोई घरों में खून किया जाता है?

इस पर मजा यह कि एक दयालु सुसंस्कृत महिला इन जानवरों की लाशों को इस पूरे भरोसे के साथ निगल जाती है कि वह जो कुछ

कर रही ठीक कर रही है। साथ ही वह दो विरोधी बातें भी कहती है:—

पहली बात तो वह यह कहती है कि उसके डाक्टरों की राय में वह इतनी नाजुक है कि सिर्फ शाक-भाजी के आहार पर जीवित नहीं रह सकती और उसके कमजोर ढांचे के लिए मांस नितान्त आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि वह इतनी संवेदनाशील है कि वह न केवल खुद जानवरों को पीड़ा नहीं देना चाहती, बल्कि उनकी पीड़ा को देख भी नहीं सकती।

किंतु वस्तुस्थिति यह है कि बिचारी यह महिला कमजोर ता इसलिए है कि उसे मनुष्यों की प्रकृति के विपरीत आहार खाने की आदत डाली गई है और यह जानवरों के उत्पीड़न को इस कारण नहीं रोक सकता कि वह उनको खाती है।

[१०]

हम यह दम्भ नहीं कर सकते कि हम इस बात को नहीं जानते। हम शुतुरमुर्ग नहीं है और यह नहीं मान सकते कि यदि हम जिस चीज को न देखना चाहें, उसकी ओर से आँखे बन्द कर ले तो उस चीज का अस्तित्व ही मिट जायगा। जिस चीज को हम देखना नहीं चाहते, उस चीज को जब हम खाना चाहते है, तो यह बात खास तौर पर चरितार्थ होती है। किंतु मांस वस्तुत: अनिवार्य अथवा यदि अनिवार्य नहीं तो कम से कम किसी रूप में उपयोगी हो तब न! वह तो सर्वथा अनावश्यक है, वह पशु-वृत्तियों को बढाता है, वासनाये जागृत करता है और व्यभिचार और शराबखोरी का प्रसार करता है। और इस कथन की इस सत्य से लगातार पुष्टि होती रहती है कि युवक, दयालु विवेक-शील व्यक्ति खास कर स्त्रियाँ और लडकियाँ, अनजाने यह महसूस करते है कि गो-मांस-सेवन और सद्गुण परस्पर विरोधी तत्व है और

और ज्यों ही वे भले बनने की इच्छा करते है मांस खाना छोड़ देते हैं।

जिन लोगों को इस कथन की सत्यता में शक हो उन्हें वैज्ञानिकों और डाक्टरों की इस विषय की पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए। डॉक्टर ए० हेग की 'भोजन और आहार' नाम की छोटी पुस्तक अथवा 'यूरिक एसिड किस प्रकार रोड़ा पैदा करता है' शीर्षक विस्तृत वैज्ञानिक ग्रन्थ पढना चाहिए। इसमें यह सिद्ध किया गया है कि मांस मनुष्य के पोषण के लिए आवश्यक नही है। उन्हे पुराने ढर्रे के डाक्टरों की बात न सुनना चाहिए जो इस कथन को पुष्ट करते है कि मांस आवश्यक है सिर्फ इसलिए कि उनके पूर्वज ऐसा मानते थे और वे खुद भी ऐसा ही मानते है। यह डाक्टर अपनी राय का ठीक उसी प्रकार दृढ़ता और द्वेषपूर्वक समर्थन करते है जिस प्रकार कि पुरानी और परम्परागत चीजों का समर्थन किया जाता है।

तो, फिर मै क्या कहना चाहता हू ? क्या यह कि लोगों को नैतिक बनने के लिए मास खाना छोड़ देना चाहिए ? बिल्कुल नहीं।

मै तो केवल यही कहना चाहता हूं कि उत्तम जीवन के लिए सद्कार्यो का एक क्रम आवश्यक होता है, यदि मनुष्य गम्भीरतापूर्वक सही जीवन बिताने का प्रयत्न करे तो उन्हे एक निश्चित क्रम का अनुसरण करना होगा और इस क्रम मे आत्म-सयम, आत्म-निरोध पहला सद्गुण है जिसे प्राप्त करने की मनुष्य को कोशिश करनी चाहिए। और आत्म-संयम सिद्ध करने के लिए मनुष्य को अनिवार्यत: एक निश्चित क्रम का अनुसरण करना पड़ेगा और इस क्रम मे पहला स्थान आहार विषयक संयम, अर्थात् उपवास को देना पड़ेगा। और यदि मनुष्य वस्तुत: उत्तम जीवन निर्वाह करने के लिए उत्सुक हुआ तो उपवास के सिलसिले मे सबसे पहले मास का परित्याग करेगा, क्योंकि मांस-सेवन से न केवल विकार जागृत होते है, बल्कि उसका उपयोग ही अनैतिक है। मास के लिए एक ऐसा कार्य करना पड़ता है जो नैतिक भावनाओं के विपरीत होता है। उसके मूल में लोभ और स्वादु भोजन की इच्छा

पाई जाती है।

मांस से क्यों परहेज करना चाहिए और उपवास और नैतिक जीवन के लिए मांस-निषेध क्यों पहला कदम है, यह बात 'भोजन और आहार' नामक पुस्तक में बड़ी योग्यतापूर्वक प्रतिपादित की गई है। सिर्फ एक आदमी ने ही नहीं, बल्कि मानवता के समस्त जागृत जीवन-काल में जितने भी श्रेष्ठ पुरुष हुए हैं उनके रूप में सारी मानव जाति ने उक्त सत्य का प्रति-पादन किया है।

किन्तु यदि मांस-भोजन का अनौचित्य अर्थात् अनैतिकता मानवता को इतने लम्बे अर्से से ज्ञात थी तो लोग इस नियम को अब तक क्यों न मानने लगे? यह प्रश्न उन लोगों द्वारा पूछा जायगा, जो विवेक की अपेक्षा लोकमत से अधिक प्रभावित होते हैं।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मानवता की नैतिक प्रगति, जो अन्य सब प्रगतियों की मूलाधार होती है, हमेशा धीमी होती है। किन्तु आकस्मिक नहीं, बल्कि वास्तविक प्रगति का चिन्ह यह है कि वह बिना किसी बाधा के सतत होती रहे।

और निरामिष आहार आन्दोलन की प्रगति इसी किस्म की है। यह प्रगति उपरोक्त में वर्णित लेखकों के शब्दों और मानव जाति के अमली जीवन में प्रदर्शित हुई है। मानव जाति अनेक कारणों से स्वयं-मेव मांसाहार से शाकाहार की ओर बढ़ी है और जानबूझकर आन्दोलन के उसी मार्ग पर जा रही है, जिसमें प्रकटतः बल पाया जाता है और जो अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है। यह आन्दोलन निरामिष भोजी आन्दोलन है। यह गत दस वर्षों में अधिकाधिक तेजी से आगे बढ़ा है। प्रतिवर्ष इस विषय पर अधिकाधिक पुस्तकें और पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। ऐसे लोग अधिकाधिक हमारे देखने में आ रहे हैं जिन्होंने मांस-सेवन छोड़ दिया है। और विदेशों में खास तौर पर जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमेरिका में शाकाहारी होटलों और विश्रांति-गृहों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है।

इस आन्दोलन पर उन लोगों को खास तौर पर प्रसन्नता होनी चाहिए जो पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिए नहीं कि निरामिषतावाद उस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है (प्रत्येक सही कदम महत्त्वपूर्ण और अ-महत्त्वपूर्ण दोनों होते हैं) बल्कि इसलिए कि यह इस बात का द्योतक है कि मानव जाति की पूर्णता प्राप्त करने की आकांक्षा गम्भीर और सच्चा है, क्योंकि उसका पहले कदम से लगा कर एक ही अपरिवर्तनीय क्रम रहा है।

जिस प्रकार लोग किसी मकान की दूसरी मंजिल पर पहुंचने के लिए विभिन्न स्थानों से दीवार पर चढ़ने की निष्फल और यदा-कदा कोशिश करने के बाद अन्त में सीढ़ियों के आगे जमा हो जायं और उन्हें इस बात का यकीन हो जाय कि पहली सीढ़ी से होकर ही ऊपर चढ़ा जा सकता है, तो उन्हें प्रसन्नता हुए बिना नहीं रह सकती, इसी प्रकार निरामिषतावाद की प्रगति पर कोई भी व्यक्ति प्रसन्न ए बिना नहीं रह सकता।

[यह निबन्ध हावर्ड विलियम्स की भोजन-विज्ञान (The Ethics of Diet) नामक पुस्तक के रूसी भाषान्तर की भूमिका के रूप में लिखा गया था।]

: २ :

लोग नशा क्यों करते हैं ?

[१]

लोग ऐसी चीजों का इस्तेमाल क्यों करते हैं, जो उनको बेवकूफ और बेहोश बनाती हैं ? लोग शराब, गांजा, भांग, ताड़ी, तम्बाकू इत्यादि क्यों पीते हैं ? वे अफीम, चरस, सुल्फा और कोकीन जैसी नशीली चीजों का इस्तेमाल क्यों करते हैं ? नशा करने की आदत लोगों में पहले किस तरह और क्यों शुरू हुई ? इस आदत का प्रसार इतना जल्दी क्यों हुआ और अब भी यह सभ्य और जंगली सब तरह के लोगों में इतनी तेजी से क्यों फैलती जा रही है ? जहां पर शराब, ताड़ी इत्यादि का प्रचार नहीं है, वहां पर भी अफीम, सुल्फा, गांजा, चरस, भांग इत्यादि का इतना रिवाज क्यों है ? क्या वजह है कि दुनिया के इस कोने से उस कोने तक सर्वत्र तम्बाकू का इतना अधिक प्रचार हो रहा है ?

लोग नशा कर के संज्ञाहीन बनना क्यों पसन्द करते हैं ?

जब हम किसी व्यक्ति से पूछते हैं कि भाई, तुम्हें शराब पीने की लत कैसे पड़ी। और तुम अब भी शराब क्यों पीते हो तो वह फौरन जवाब देता है, ओह, इस के पीने में बड़ा मजा आता है। और सब लोग इसको पीते हैं इसलिए मैं भी पीता हूं। इसके अलावा वह यह भी कहता है कि 'इसके पीने से चित्त प्रसन्न रहता है, कुछ लोग तो—जिन्होंने सम्भवतः कभी इस बात को सोचने का कष्ट नहीं उठाया कि शराब पीकर वे कोई अच्छा काम कर रहे हैं या बुरा—यहां तक कह डालते हैं कि शराब स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। इसके पीने से शरीर की ताकत बढ़ती है। अर्थात् वे एक ऐसी बात कहते

हैं जो कभी की निराधार साबित हो चुकी है।

किसी तम्बाकू पीने वाले से पूछिये कि भाई तुमने तम्बाकू पाना क्यों शुरू किया और अब भी तुम तम्बाकू क्यों पीते हो; तो वह भी यही जवाब देगा कि हर एक आदमी तम्बाकू पीता है इसलिए मैं भी पीता हूं, और इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह से कट जाता है।

जो लोग अफीम, चरस, सुल्फा, गांजा, भांग वगैरा का इस्तेमाल करते हैं वे भी शायद इसी तरह के जवाब देंगे।

यदि कोई आदमी 'अपना समय अच्छी तरह से काटने' 'अपने चित्त को प्रसन्न करने, अथवा 'दूसरे आदमियों की देखा-देखी करने' के लिए हारमोनियम पर अपनी अँगुलियां फिरावे, बंशी बजावे, वीणा के स्वर निकाले, सितार झनझनावे, अथवा इसी प्रकार का दूसरी कोई काम करे तो उसका ऐसा करना क्षम्य माना जा सकता है। अर्थात् अगर कोई आदमी ऐसा काम करे जिससे प्रकृति-प्रदत्त सम्पत्ति का अपव्यय न होता हो, बड़े भारी परिश्रम से उपार्जित वस्तुओं का नाश न होता हो और न अपना अथवा दूसरे लोगों का प्रत्यक्षतः कोई नुकसान होता हो, तो उसका यह कार्य क्षम्य समझा जा सकता है। लेकिन तम्बाकू, शराब, गांजा, अफीम इत्यादि चीजों को तैयार करने में लाखों आदमियों की मेहनत खर्च होती है और लाखों बीघा बढ़िया से बढ़िया जमीन में (और वह भी बहुधा वहां पर जहां लोगों के पास अनाज का खेती करने के लिये जमीन का अभाव होता है) आलू,* सन,* पोस्त, अँगूर,* तम्बाकू और चाय की खेती की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जानता और स्वीकार करता है कि ये मादक द्रव्य स्पष्टतः हानिकर हैं। और इनका उपयोग करने से लोगों में

---

*यूरोप में इन चीजों का इस्तेमाल तरह-तरह की शराबें और दूसरी नशीली वस्तुएं तैयार करने में बहुतायत से होता है।

भयानक बुराइयां पैदा हो जाती हैं। नशीली चीजों की बदौलत दुनिया में जितने आदमी मौत के शिकार होते हैं; उतने तमाम युद्धों और छूत वाली बीमारियों की बदौलत भी नहीं होते। लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं। और इसलिए यह कहना कि "सब लोग पीते हैं इसलिए मैं भी पीता हूँ," या "समय काटने के लिये पीता हूँ," या "मजा हासिल करने के लिये पीता हूँ" बिल्कुल गलत है।

अतएव लोगों के नशा करने के कारण कुछ दूसरे ही होने चाहिए। हमको सब जगह बराबर ऐसे लोग मिलते हैं जो अपने बाल-बच्चों से प्रेम करते हैं और उनके लिए सब तरह का बलिदान करने को तैयार होते हैं। लेकिन फिर भी ये लोग शराब, ताड़ी अथवा चरस, सुल्फा, गांजा, अफीम और यहां तक कि तम्बाकू पर इतना पैसा बर्बाद कर डालते हैं जितना उनके नंगे भूखे बच्चों के भोजन और वस्त्र के लिय पूरे तौर पर काफी हो सकता ह अथवा कम से कम उससे उनको कष्टों से बचाया जा सकता है। अगर किसी आदमा के सामने एक तरफ तो यह प्रश्न हो कि जिस कुटुम्ब से वह प्रेम करता है वह और अभाव-ग्रस्त हो जायगा और दूसरी तरफ उसके सामने नशीली चीजों को इस्तेमाल न करने का सवाल हो और यदि फिर भी वह पिछली बात की अपेक्षा पहली बात पसन्द करे तो उसके ऐसा करने की वजह यह नहीं हो सकती वह दूसरों की देखा देखी या प्रसन्न होने के लिए ऐसा करता है। उसको इसकी तरफ प्रेरित करने वाला कोई दूसरा अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। क्योंकि यह स्पष्ट है कि समय काटने अथवा केवल मजा हासिल करने के लिए इस तरह का काम नहीं किया जाता। किसी बड़े प्रबल कारण से प्रेरित होकर ही आदमी ऐसा काम करता है।

जहां तक मैंने इस विषयका अध्ययन किया, एवम इसके बारे में सोचा-विचारा है, दूसरे लोगों के इस तरह के उदाहरणों पर गौर किया

है और अपने निज के विषय में–जब मैं स्वयं शराब और तम्बाकू पिया करता था—गहराई से छान-बीन की है वहां तक मुझको मालूम हुआ है कि लोगों की इस आदत का कारण मामूली नहीं बल्कि बहुत बड़ा और गम्भीर है। मेरी सम्मति में वह कारण नीचे लिखे ढंग से वर्णन किया जा सकता है:-

यदि मनुष्य अपने जीवन की ओर दृष्टि डाले तो उसको अपने शरीर के अन्दर वहुधा दो प्राणी दिखाई पड़ेंगे—एक तो वह जो अन्धा है और जिसका सम्बन्ध शरीर से है और दूसरा वह जो देखता है और जिसका सम्बन्ध आत्मा से है। उसके शरीर का अन्धा भाग मशीन की तरह खाता है, विश्राम लेता है, सोता है, सन्तानोत्पत्ति करता है और हिलता-डुलता है। उसके शरीर का आत्मिक या देखने वाला भाग शरीरिक भाग से बिलकुल जुड़ा हुआ होने पर भी स्वयं कुछ नहीं करता। वह सिर्फ पहले वाले भाग की चेष्टाओं और कार्यों को देखा करता है। जब वह उसके किसी काम को पसन्द करता है तो उसके साथ सहयोग करता है और जब वह उसके किसी काम को नापसन्द करता है तो उससे असहयोग कर देता है।

शरीर के इस देखने वाले या आत्मिक भाग की तुलना हम दिशा सूचक यंत्र की सुई के साथ कर सकते हैं। इस सुई का एक सिरा उत्तर की तरफ होता है और दूसरा सिरा दक्षिण की तरफ। यह सुई अपनी पूरी लम्बाई तक एक ऐसा चीज से ढकी रहती है जो तबतक हमारी नजर नहीं आ सकती जबतक कि यह सुई उपरोक्त दिशाओं को बतलाती रहती है। परन्तु ज्यों ही सुई इधर-उधर हिली-डुली और ज्योंही इसने दूसरी दिशाओं को बतलाना शुरू किया त्योंही वह ढकने वाली चीज हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाती है।

ठीक इसी प्रकार हमारा देखने वाला या आत्मिक अंश जिसके बाह्य स्वरूप को हम लोग सामान्यतः अन्तः-करण कह कर सम्बोधित

करते हैं हमको हमेशा एक तरफ सत्य और दूसरी असत्य का बोध कराता है। जबतक हम इस आत्मिक अंशके बतलाये हुए मार्ग अर्थात् गलत रास्ते के बजाय सही रास्ते का अनुसरण करते रहते हैं तबतक हमको उसके अस्तित्व का अनुभव नहीं होता परन्तु ज्योंही हम कोई काम अपना अन्तरात्मा के आदेश के विपरीत करते हैं त्योंही हमको इस आत्मिक अंश के अस्तित्व का पता लग जाता है और तब वह हमको बतलाता है कि हमारे शरीरिक अंश का काम अन्तरात्मा के निर्देश के विपरीत हुआ है। जब किसी मल्लाह को यह मालूम हो जाता है कि वह गलत रास्ते पर जा रहा है तब वह अपने मन का सामाधान दो तरीकों से कर सकता है। एक यह कि जबतक दिशा सूचक यंत्र द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर वह अपनी नाव को नहीं ले आवे तब तक पतवारों को घुमाने, एंजिन को चलाने अथवा पालों को बांधने का क्रिया को रोक दे। दूसरे यह कि वह इस बातको भुला दे कि उसने गलत रास्ता पकड़ लिया है। इसी तरह जो आदमी इस बातका अनुभव करता है कि उसकी अन्तरात्मा और उसके शारीरिक अंश के कार्यों में परस्पर विरोध है, तो वह अपना काम केवल इन्हीं दो तरीकों से जारी रख सकता है—एक यह कि वह अपने शारारिक अंश के कार्यो को आत्मा के आदेशों के अनुकूल बना ले और दूसरे यह कि अन्तरात्मा द्वारा बतलाई गई अपने शारीरिक अंश की गलतियों की तरफसे आंखें मींच ले।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य के जीवन में मुख्यतः दो प्रकार के कार्य दिखाई देते हैं। एक तो वे कार्य हैं जिन्हे अन्तरात्मा स्वीकार करता है और जो उसी के अनुसार किये जाते हैं और दूसरे वे कार्य हैं जिन्हे अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करता और जो अन्तरात्मा की राय के खिलाफ किये जाते हैं, ताकि मनुष्य पहले की भांति ही अपनी जीवन-चर्चा जारी रख सके।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते हैं और कुछ लोग दूसरे प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यों में सफलता पाने का सिर्फ एक उपाय

है, और वह यह कि हम अपनी आत्मा को उन्नत बनावें, अपने आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करें और अपने आत्मिक सुधार की ओर दत्त-चित्त हों। दूसरे प्रकार के कार्यों अर्थात् अन्तरात्मा के आदेशों पर परदा डालने के कार्यों में सफलता पाने के दो उपाय हैं। एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामों में अपने आपको लगाये रखें जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पावे और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही मैला कर डालें।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से यह कार्य कर सकता है। मानों वह अपनी नजर को किसी ऐसी दूसरी चीज पर लगादे जो उससे ज्यादा आकर्षक है या वह अपनी आंखों को ही बन्द कर ले। इसी प्रकार हर एक आदमी अपनी अन्तरात्मा के आदेशों की दो प्रकार से उपेक्षा कर सकता है। मानों वह अपने ध्यान को खेल-कूद, राग, रंग, नाटक, सिनेमा, इसी तरह के अन्य कामों में लगा दे या वह अपनी देखने की आन्तरिक शक्ति को कुण्ठित बना ले।

जिनकी नैतिक अनुभूति मंद और मर्यादित होती है, वे जब मनोरंजन के बाह्य कार्यों में व्यवस्त हो जाते हैं तो बहुधा वे अन्तःकरण के उन संकेतों को नहीं सुन पाते जो यह सूचित करते हैं कि वे जीवन में कहाँ पथ-भ्रष्ट होते हैं। किन्तु जिनका अन्तःकरण जाग्रत होता है, उनकी अनुभूति पर पर्दा डालने के लिए यह बाह्य साधन बहुधा काफी नहीं होते।

बाह्य साधन मनुष्य का ध्यान इस बात पर से सर्वथा नहीं हटा पाते कि उसके जीवन और अन्तरात्मा के आदेशों में अन्तर है। यह ज्ञान मनुष्य के जीवन में बाधक बनता है, इसलिए लोग यथपूर्व जीवन-यापन करने के लिए, अचूक आन्तरिक उयाय का आश्रय लेते हैं अर्थात्

नशीली चीजों द्वारा मस्तिष्क को विषाक्त करके अन्तःकरण को कुण्ठित कर डालते हैं।

मनुष्य यह जानते हुए भी कि वह अपने अन्तरात्मा के आदेशों के अनुसार जीवन यापन नहीं कर रहा है, अपनी जीवन चर्या को नहीं बदल पाता, अन्तरात्मा के अंशों का अनुसरण नहीं कर पाता। जिन बाह्य कर्मो द्वारा जीवन और आत्मा के विरोध पर से ध्यान हट सकता है, वे नाकाफी सिद्ध होते हैं या पुराने पड़ जाते हैं और इसलिए लोग जीवन की गलतियों के सम्बन्ध में अन्तःकरण के आदेशों की उपेक्षा कर के यथापूर्व जीवन बिताने के लिए शरीर के उस अंग को कुछ समय के लिए विषाक्त बनाकर बेकार कर देते हैं जिसके द्वारा अन्तःकरण व्यक्त होता है। यह वैसी ही बात है जैसी कि यह बात कि जब कोई मनुष्य किसी चीज को नहीं देखना चाहता तो अपनी आखें बन्द कर लेता है।

[२]

दुनिया में लोग शराब, अफीम, चरस, भांग, और तम्बाकू इत्यादि इसलिए नहीं पीते कि ये चीजें स्वादिष्ट होती हैं, या इनसे आनन्द प्राप्त होता है, या शरीर में फुर्ती और ताजगी आती है। बल्कि लोग नशा इसलिए करते हैं कि वे अपना अन्तरात्मा की आवाज नहीं सुनना चाहते।

एक दिन मैं एक सड़क पर चला जा रहा था। उस सड़क पर कुछ गाड़ीवाले आपस में बातचीत करते हुए जा रहे थे। उनमें से एक को मैंने यह कहते हुए सुना, "सचमुच, जो आदमी अपने होश में होगा वह इस काम को करते हुए जरूर लज्जित होगा।"

उनके इस कथन का मतलब हुआ कि मनुष्य को जो काम नशे में ठीक मालूम होता है, होश आने पर उसी काम को करने में उसको शरम मालूम पड़ता है। इन शब्दों से हमको उस मूल कारण का पता लगता जाता है जो मनुष्यों को नशा करने के लिये प्रेरित करता है।

लोग नशा इसलिए करते हैं कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कर लेने के बाद उन्हें शरम मालूम न पड़े या वे ऐसी हालत में हो जायें कि उनको उन कार्यों को करने में कोई हिचक मालूम न हो जो उनकी अन्तरात्मा के तो विरुद्ध हैं लेकिन जिन्हें करने के लिए उनकी पशुवृत्ति उनको प्रेरित करती है।

जब कोई आदमी नशे की हालत में नहीं होता है तो वह किसी वेश्या के यहां जाने, किसी के घर में चोरी करने या किसी की हत्या करने में हिचकिचाता तथा शरम महसूस करता है। परन्तु जो आदमी नशे में होता है वह इन कामों को करते हुए जरा भी नहीं शरमाता। यही वजह है कि जो मनुष्य अपनी अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है, वह नशा पीकर अपने आपको बदहोश कर लेता है।

मुझ को उस रसोइये का बयान अच्छी तरह याद है जिसने मेरी एक रिश्तेदार वृद्ध महिला को मार डाला था। वह रसोइया इस महिला के यहां नौकर था। उसने अदालत के सामने बयान देते हुए कहा कि पहले तो मने अपनी प्रेमिका को—जो उसी घर में नौकर थी घर के बाहर भेज दिया। बाद में जब मालिकिन को मारने का समय आया तब मैंने हाथ में छुरा लेकर उसके सोने के कमरे में जाने का इरादा किया। लेकिन इस वक्त मुझको अनुभव हुआ कि जब तक मैं अपने पूरे होश में हूं तब तक मै इस काम को नहीं कर सकूंगा। ....'जब मनुष्य अपने होश में होता है, तब वह ऐसा काम करते हुए शरमाता है।' इसलिए मैं लौटकर वापस अपनी जगह पर चला आया। यहां पर पहले से शराब के दो गिलास भरकर मैं रख गया था। मैं इन दोनों गिलासों को पी गया। इसके बाद मुझमें इस काम को करने की हिम्मत आई। और मैंने महिला को मार डाला।

दुनिया में नब्बे फीसदी अपराध इसी तरह से किये जाते हैं।—

"अपनी हिम्मत रखने के लिए नशा करो।"

दुनियामें जिन स्त्रियों का पतन होता है, उनमें से आधी स्त्रियां शराब के नशे में ही पतित होती हैं। जो लोग पतित स्त्रियों के घरों अथवा वेश्यालयों में जाते हैं, उनमें से करीब-करीब सब लोग तभी ऐसा करते हैं जब वे नशे में बदहोश होते हैं। लोग शराब के इस गुण को अच्छी तरह से जानते हैं कि उसके पीने से अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है। इसी मतलब से वे जान बूझकर शराब पीते हैं।

लोग न सिर्फ अपनी अन्तरात्मा की आवाज को दबाने के लिए खुद नशा करते हैं। बल्कि (इस बात का जानते हुए कि शराब का क्या असर होता है) जब वे दूसरों से अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते हैं तो उनको भी जान-बूझ कर मादक द्रव्य पिला देते हैं। अर्थात् उनको अंतःकरण से वंचित करने केलिए बदहवास कर देते हैं। युद्ध में सिपाहियों को आमने सामने लड़ाने के लिए आमतौर पर शराब पिलाकर मत्त बना दिया जाता है क्योंकि शराब पीने के बाद ही सिपाही अच्छी तरह से लड़ सकते हैं। सेवास्टोपोल पर आक्रमण करने वाले सारे के सारे फ्रांसीसी सिपाही शराब के नशे में चूर थे।

लड़ाई में जब कोई किला या दुर्ग जीत लिया जाता है और जब विजयी फौज के सिपाही अरक्षित बुड्ढों और बच्चों को कत्ल करने तथा लूट मार करने से हिचकते हैं तो बहुधा उन सिपाहियों को शराब पिलाने का हुक्म दिया जाता है। तब वे अपने अफसरों का आज्ञा के अनुसार सब तरह का अत्याचार करने पर उतारू हो जाते हैं।

हर एक आदमी ऐसे लोगों को जानता है जिन्होने अपने किसी दुष्कर्म के परिणामस्वरूप इसलिए शराब पीना शुरू कर दिया कि वे अपना अन्तरात्मा की प्रताड़नाओं से बच सकें। प्रत्येक व्यक्ति इस बात को देख सकता है कि जो लोग हीन चरित्र के हैं और जो दुराचार पूर्ण जीवन बिताते हैं वे दूसरे लोगों की अपेक्षा नशाली चीजों

का ओर जल्दी आकर्षित होते हैं। डाकुओं और चोरों के गिरोह, वेश्याएँ और व्यभिचारी पुरुष--सब के सब बिना नशे के जिन्दा नहीं रह सकते।

प्रत्येक व्यक्ति इस बात को जानता और स्वीकार करता है कि अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि की ताड़ना से बचने के लिए लोग नशीली चीजों का इस्तेमाल करते हैं। वह यह भी जानता है कि कुछ खास प्रकार का अनैतिक जीवन व्यतीत करते समय मनुष्य अपनी अन्तरात्मा को कुण्ठित करने के लिए इन नशीले पदार्थों का इस्तेमाल करता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति इस बात को भी जानता और स्वीकार करता है कि नशों का उपयोग करने से अन्तरात्मा कुण्ठित हो जाती है अर्थात् जब आदमी शराब के नशे में चूर होता है तब वह ऐसे-ऐसे कामों के करने पर उतारू हो जाता है, होश हवास दुरुस्त होने पर जिनको करने की क्षण के लिए भी कल्पना नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति इन बातों को मानता है, लेकिन फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि नशों का इस्तेमाल करने के बाद जब उनका नतीजा चोरी, हत्या, बलात्कार तथा इसी तरह के दूसरे जघन्य कर्मों के रूप में नहीं निकलता, जब नशीली चीजों का इस्तेमाल लोग किसी भयानक अपराध को कर लेने के बाद नहीं करते, बल्कि नशीली चीजों का इस्तेमाल उन लोगों के द्वारा किया जाता है जिनके रोजगारों को हम जघन्य नहीं ठहराते और जब नशीली चीजों का इस्तेमाल एक साथ बहुसी बड़ी तादाद में नहीं होता प्रत्युत नियमित रूप से थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होता है तो किसी कारणवश यह मान लिया जाता है कि नशीली चीजों से अन्तःकरण कुण्ठित नहीं होता।

इस तरह से लोगों का ख्याल है कि एक सम्पन्न घर के रूसी पुरुष के लिए दोनों समय के भोजन से पूर्व एक-एक गिलास वोड्का और भोजन करते समय एक-एक गिलास शराब पी लेने अथवा एक फ्रांस-निवासी के लिए एबसिन्थ नामक मदिरा पी लेने या एक अंग्रेज

के लिए बराण्डी अथवा व्हिस्की का एक गिलास ले लेने, या एक जर्मन के लिए लेगर-बीयर नामक शराब का इस्तेमाल कर लेने या एक सम्पन्न घर के चीन निवासी के लिए अफीम की एक हल्की सी मात्रा ले लेने और इन सबके साथ थोड़ी-सी तम्बाकू की फूंके खींच लेने से सिवाय तबीयत खुश हो जाने के और कोई बात नहीं होती और इसका लोगों की अन्तरात्मा पर कोई असर नहीं पड़ता।

इस प्रकार का नियमित और परिमित नशा करने के बाद यदि लोग कोई जुर्म नहीं करते, न हत्या करते हैं और न चोरी, अपनी आदत के मुताबिक सिर्फ कुछ बुरे और मूर्खतापूर्ण काम कर डालते हैं, तो ऐसा समझा जाता है कि ये काम नशे की वजह से नहीं किये गये, बल्कि अपने-आप हो गए हैं। लोगों का ख्याल है कि नशा करने वाले लोग यदि फौजदारी कानून के खिलाफ कोई जुर्म न करें तो उनके लिए अपनी अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि को कुण्ठित करने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। और उनका जीवन बिल्कुल अच्छा जीवन होता है यदि वे नशे न करते होते तो भी ठीक वैसा ही जीवन बिताते होते। इसके अतिरिक्त लोगों की यह भी धारणा है कि नशीले पदार्थों का रोजाना इस्तेमाल करने से अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि कुण्ठित नहीं होती है।

प्रत्येक व्यक्ति इन बातों को निजी अनुभव से जानता है कि शराब अथवा तम्बाकू पीने से दिमाग की हालत बदल जाती है, नशे की हालत में आदमी उन बुरे कामों को करने से ज़रा भी नहीं शरमाता जिनकी वह होश में कल्पना तक नहीं कर सकता। अन्तरात्मा का हल्की-से-हल्की प्रस्तावना के बाद मनुष्य को किसी नशीली चीज का इस्तेमाल करने का प्रेरणा होती है और नशे की हालत में मनुष्य के लिए अपने जावन और परिस्थिति का सिंहावलोकन करना तथा उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना कठिन होता है। साथ ही प्रत्येक आदमी इस बात को भी जानता है कि नशीली चीजों के सतत और

नियमित उपयोग का शरीर पर ठीक वही परिणाम होता है जो उनका कभी-कभी एक साथ अत्यधिक मात्रा में इस्तेमाल करने का होता है। इन बातों के बावजूद, परिमित मात्रा में शराब का नशा करने वाले और तम्बाकू पीने वाले भलेमानसों को हम यह कहते हुए सुनते हैं कि वे अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि को कुण्ठित कर लेने के लिए इन चीजों का इस्तेमाल नहीं करते प्रत्युत बदन में फुर्ती लाने और चित्त को प्रसन्न करने के लिए ही ऐसा किया करते हैं।

परन्तु यदि कोई मनुष्य इस विषय पर गम्भीरता के साथ और निष्पक्ष भाव से विचार करेगा—और अपनी बुरी आदतों के बचाव का प्रयत्न नहीं करेगा—तो उसको सारा मामला स्पष्टतापूर्वक समझ में आ जायगा। तब उसको पहली बात यह मालूम होगी कि अगर कभी-कभी अधिक मात्रा में नशा करने से मनुष्य की अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, तो लगातार नियमित रुप से कम अथवा ज्यादा परिमाण में शराब, तम्बाकू वगैरह पीने से भी वही असर पैदा होता है अर्थात् शराब, तम्बाकू आदि नशीली चीजें पहले तो उसकी दिमागी कार्य-शक्ति को तेज करती हैं और बाद में बिल्कुल निस्तेज बना देती हैं। दूसरी बात उस को यह मालूम होगी कि तमाम नशीली चीजों के अन्दर अन्तरात्मा को कुण्ठित करने का गुण मौजूद होता है। चाहे नशीली चीजों के प्रभाव में आकर मनुष्य हत्या, डकैती, बलात्कार इत्यादि पाशविक जुर्मों को करे, और चाहे उनका इस्तेमाल करने के बाद वह ऐसे शब्द अपने मुंह से निकाले जिनको वह साधारण हालत में कभी नहीं निकाल सकता या ऐसी बातों को सोचे और अनुभव करे जिनको वैसा कभी सोच या अनुभव नहीं कर सकता, इन दोनों हालतों में नशीली चीजों के अन्दर अन्तरात्मा को कुण्ठित करने और विवेक-बुद्धि पर पर्दा डालने का गुण सर्वदा विद्यमान रहता है। तीसरे उसको यह भी मालूम होगा कि अगर चोरों, लुटेरों, वेश्याओं और व्यभिचारियों को अपनी

अन्तरात्मा को कुण्ठित करने के लिए इन नशाली चीजों की आवश्यकता पड़ती है, तो उन लोगों को भी इन चीजों की जरूरत पड़ती है जो अपनी आत्मा के द्वारा निन्दनीय ठहराये गये धन्धों को करते हैं फिर चाहे इन धंधों को दूसरे लोग समुचित और सम्मानपूर्ण ही क्यों न समझते हों।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस बात को समझे और स्वीकार किये बिना हमारा छुटकारा नहीं है कि नशीली चीजों के इस्तेमाल करने का एक मात्र कारण, चाहे वह इस्तेमाल कम मात्रा में होता हो चाहे अधिक मात्रा में, चाहे नियमित रूप से होता हो चाहे कभी-कभी, और चाहे समाज के उच्च वर्गों में होता हो चाहे निम्न श्रेणी के लोगों में, वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अर्थात् लोग अपनी अन्तरात्मा की आवाज को दबाने की आवश्यकता अनुभव करते हैं, और वह इसलिए कि वे उस विरोध को न देख सकें जो उनके असली जीवन और उनकी अन्तरात्मा के आदेशों के बीच विद्यमान होता है।

(३)

अन्तरात्मा की आवाज को दबाने की आवश्यकता ही नशीली चीजों के संसार-व्यापी इस्तेमाल का एक मात्र कारण है। तम्बाकू के सार्वत्रिक उपयोग की वजह भी यही है। मेरा ख्याल है कि सम्भवतः तम्बाकू का ही संसार में सबसे ज्यादा प्रचार है और यही सबसे अधिक हानिकर है।

ऐसा ख़याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से बदन में एक तरह की फुर्ती आ जाती है, दिमाग साफ़ हो जाता है। सिर्फ दूसरी आदतों की तरह से ही यह भी मनुष्य को आकर्षित करती है। और इसके जरिये अन्तरात्मा को कुण्ठित करने वाला वह घातक असर भी पैदा नहीं होता जो शराब के पीने से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान देकर इस बात को देखें कि किस हालत में आपको तम्बाकू पीने

की इच्छा होती है तो आपको निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी अन्तरात्मा को उसी तरह कुण्ठित कर देता है जिस तरह शराब का नशा करता है। और लोग उसी समय जान-बूझ कर तम्बाकू पीते हैं जिस समय उन्हें अपनी आत्मा को कुण्ठित करने की जरूरत पड़ती है। अगर तम्बाकू के इस्तेमाल से सिर्फ दिमाग साफ होता है या बदन में फुर्ती आती तो लोगों को उसके इस्तेमाल की इतनी तेज इच्छा नहीं होती और यह इच्छा खास अवसरों पर प्रकट होती है। हम लोगों को अक्सर यह कहते हुए भी नहीं सुनते कि हम चाहें बिना भोजन के रह जांय लेकिन तम्बाकू के बिना नहीं रह सकते और नहीं हम लोगों को कभी-कभी सचमुच भोजन पर तम्बाकू को प्रधानता देते हुए देखते हैं।

मैंने ऊपर उस रसोइये का जिक्र किया है जिसने अपनी मालिकिन को मार डाला था। उस रसोइये ने अदालत के सामने बयान देते हुए कहा कि शराब के दो गिलास चढ़ाकर मैं अपनी मालिकिन के सोने के कमरे में घुस गया। उस समय मालिकिन अपने बिछौने पर सोई हुई थी। मैंने उसके गले पर छुरा भोंक दिया। उसके गले में जोरों की गड़गड़ाहट हुई और वह गड़ ड़ ड़ ड़ करती हुई बिछौने से जमीन पर गिर पड़ी और खून का फव्वारा फूट निकला। यह देख कर मेरी हिम्मत जाती रही। मेरा होश उड़ गया। मैं उसको पूरी तरह नहीं मार सका। वह छटपटा रही थी। मैं उसके सोने के कमरे में से निकल कर बैठक के कमरे में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया। वहां मैंने अपनी जेब में से एक सिगरेट निकाल कर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही मेरे बदन में फुर्ती आ गई और मेरा दिल फिर से मजबूत हो गया। तब मैं उठ कर वापस सोने के कमरे में चला गया। अब मुझको अपनी मालिकिन का गला काटने में जरा भी झिझक मालूम नहीं हुई। मैंने उसका सिर धड़ से अलग कर डाला। इसके बाद मैं उसके माल असबाब को टटोलने लग गया।

रसोइये के उपरोक्त बयान से यह साफ जाहिर हो जाता है कि उस समय उसके अन्दर सिगरेट पीने का इच्छा इसलिए पैदा नहीं हुई कि वह अपना दिमाग साफ करना चाहता था, या अपने चित्त को प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि इस इच्छा के पैदा होने का कारण यह था कि वह उस वस्तु (अन्तरात्मा) को कुण्ठित करना चाहता था जो उसको हत्या करने से रोक रही थी।

तम्बाकू पीने वाला प्रत्येक मनुष्य इस बात को देख सकता है कि उसके अन्दर तम्बाकू पीने की इच्छा कुछ खास-खास और विशेषतः कठिनाई के अवसरों पर ही पैदा हुआ करती है। मुझको उस समय का भली भांति स्मरण है जब मैं स्वयं तम्बाकू पिया करता था। जब मुझे उस समय की याद आती है तो मेरे मन में स्वतः यह प्रश्न उठने लगता है कि, "मुझको तम्बाकू पीने की विशेष आवश्यकता कब मालूम होती है?" मुझे तम्बाकू पीने की खास जरूरत उसी समय पड़ा करती थी जब मुझे याद आने वाली किसी बात को मैं याद रखना नहीं चाहता था--अर्थात् किसी बात को भुलाना चाहता था और उस पर विचार नहीं करना चाहता था। मैं बिना किसी काम के यों ही बेकार बैठा हुआ हूं और जानता हूं कि मुझको काम में लग जाना चाहिए। परन्तु मेरे मन में काम करने की इच्छा नहीं है और इसलिए तम्बाकू पीते हुए यों ही बैठा रहता हूं। मैंने एक आदमी को वचन दिया है कि मैं ठीक ५ बजे उसके घर पहुंच जाऊंगा। पर मुझको एक दूसरी जगह बहुत देर हो गई है। मैं जानता हूं कि मुझको वहां ठीक समय पर पहुंच जाना चाहिए था। पर मैं इस बात का स्मरण नहीं करना चाहता, इस पर सोच विचार करना नहीं चाहता। इसलिए तम्बाकू पीकर इस बात को भुला देता हूं। मैं किसी आदमी से नाराज हो गया हूं और उसको झिड़कते हुए गालियां दे रहा हूं। मैं जानता हूं कि गलती कर रहा हूं और मुझको अपशब्द कहना बन्द कर देना चाहिए। लेकिन मैं

अपने चिड़चिड़ेपन और बदमिजाजी को जारी रखना चाहता हूं। इसलिए मैं तम्बाकू पी लेता हूं और गालियां देने का क्रम जारी रखता हूं। मैं ताश के पत्तों का जुआ खेल रहा हूं। खेलते-खेलते मैं हार को भुला देना चाहता हूं, और इसलिए तम्बाकू पीने लगता हूं। मैं कोई खराब काम कर बैठा हूं। मैंने गलती की है। फलतः मेरी अवस्था किं-कर्तव्य-विमूढ़ की हो गई है। मुझको चाहिए कि अपनी गलती को स्वीकार करके जिस दल-दल में मैं फंस गया हूं उसमें से अपने आपको बाहर निकाल लूं। पर मैं अपनी गलती को स्वीकार नहीं करना चाहता—मैं उसके बुरे नतीजे से बचना चाहता हूं। अतएव मैं उस गलती को दूसरों पर मढ़ता हूं और अपने चित्त को शांत करने के लिए सिगरेट पीने लगता हूं। मैं कुछ लिख रहा हूं, लेकिन जो कुछ मैंने लिखा है, उससे मुझको पूरा-पूरा सन्तोष नहीं है। मुझे चाहिए कि मैं अपना लिखना बन्द कर दूं। किन्तु मैं अपनी पूर्व-निर्धारित योजना के अनुसार अपने लेख को समाप्त करना चाहता हूं। इसलिए मैं तम्बाकू पी लेता हूं और अपना लेखन कार्य जारी रखता हूं। मैं किसी के साथ वाद-विवाद कर रहा हूं। मैं देखता हूं कि हम एक दूसरे की बात को समझ नहीं रहे हैं और न समझ ही सकते हैं। परन्तु फिर भी मैं अपनी राय जाहिर करना चाहता हूं। इसलिए मैं बीड़ी या सिगरेट पीने लगता हूं और बात-चीत का सिलसिला जारी रखता हूं। तम्बाकू पीने की आवश्यकता से सम्बन्ध रखने वाले इस तरह के सैकड़ों दूसरे उदाहरण दिये जा सकते हैं।

दूसरे मादक द्रव्यों की तुलना में तम्बाकू का एक खास गुण है कि उसके द्वारा मनुष्य बहुत आसानी के साथ प्रमत्त बन सकता है, वह प्रकटतः निर्दोष प्रतीत होती है और उसका प्रयोग मनुष्य अपने को अशान्ति पहुंचाने वाले छोटे-छोटे और पृथक-पृथक मौकों पर कर सकता है। इस बात को कौन नहीं जानता कि शराब, अफीम

और भांग का नशा करने के लिए कुछ ऐसे साधनों और चीजों की आवश्यकता पड़ा करती है जो हर समय सुलभ नहीं होते ? लेकिन तम्बाकू के लिए ऐसे साधनों की कोई आवश्कता नहीं होती। मनुष्य जेब में बीड़ी, सिगरेट, या चिलम-तम्बाकू और दियासलाई डालकर हर जगह घूम फिर सकता है। साथ ही इस बात को भी सब लोग जानते हैं कि शराबियों और अफीमचियों को लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं जब कि तम्बाकू पीने वालों के प्रति हमारे मन में कोई विशेष घृणा का भाव जागृत नहीं होता। दूसरी नशीली चीजों की अपेक्षा तम्बाकू में एक खास गुण यह है कि जहां शराब, अफीम या कोकीन का असर एक विशेष अवधि के बीच पैदा होने वाले तमाम विचारों और कार्यों पर पड़ता है, वहां तम्बाकू के नशे का उपयोग एक घटना विशेष के लिए किया जा सकता है। आप एक ऐसा काम करना चाहते हैं जो घटना विशेष में आपको नहीं करना चाहिए इसलिए आप एक बीड़ी अथवा सिगरेट पीकर अपनी विवेक-बुद्धि पर उतने अंश तक पर्दा डाल देते हैं जितने अंश तक कि आप में इतना सामर्थ्य आ जावे कि आप न करने योग्य काम को करने में हिच-किचाहट महसूस न करें। तब आपके बदन में फुर्ती आ जाती है और आप पुनः स्पष्टतापूर्वक बोलने और विचारने लगते हैं। अथवा आपको महसूस हो रहा है कि आपने एक ऐसा काम कर डाला जिसे आपको नहीं करना चाहिए था। इस समय आप बीड़ी या सिगरेट सुलगाकर अपने मुंह में रख लेते हैं। फौरन अपनी गलती अथवा बुरे काम की दुःखद स्मृति आपके अन्दर से गायब हो जाती है और आप दूसरे कार्यों में व्यस्त हो जाते हैं, उस बात को भुला देते हैं।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोग रोजमर्रा की आदत को पूरा करने अथवा समय अच्छी तरह काटने के लि तम्बाकू का नशा नहीं किया करते, बल्कि प्रत्येक तम्बाकू पीने वाला तम्बाकू इसलिए पीता है कि वह तम्बाकू को अपनी अन्तरात्मा को

कुण्ठित करने का एक साधन मानता है और इसका नशा कर लेने पर उसको उन बुरे कामों का स्मरण नहीं आता जिनको उसने किया है अथवा जिन्हें वह करने जा रहा है। इसके बाद क्या यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि मनुष्यों की जीवन-चर्या और उनको तम्बाकू पीने की लालसा में कोई मजबूत और निश्चित सम्बन्ध है ?

छोटे-छोटे लड़के तम्बाकू पीना कब शुरू करते हैं ? आम तौर पर तब जबकि उनकी बालोचित सरलता जाती रहती है। क्या वजह है कि ज्यों ही तम्बाकू पीने वाले अच्छे पुरुषों की संगति म उठने-बैठने लगते हैं त्योंही वे तम्बाकू पीना छोड़ देते हैं ? और क्या वजह है कि ज्योंही उनका पुन: दुराचारपूर्ण परिस्थितियों से पाला पड़ता है त्योंही फिर से तम्बाकू पीने लग जाते हैं ? क्या कारण है कि करीब-करीब सारे के सारे जुवारी तम्बाकू पीते हैं ? क्या कारण है कि नियमित और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले स्त्री-पुरुष तम्बाकू के पास तक नहीं फटकते ? क्या वजह है कि वेश्यायें और सारे-क-सारे पागल मनुष्य तम्बाकू पीते हैं ? यह सच है कि किसी चीज की आदत पड़ जाने पर मनुष्य को उस चीज का इस्तेमाल करने की समय-समय पर याद आ जाया करती है। लेकिन प्रकटत: अन्तरात्मा को कुण्ठित करने की लालसा के साथ तम्बाकू के नशे का एक स्पष्ट और निश्चित सम्बन्ध है, और इस नशे से जिस बात की आशा रक्खी जाती है उसको यह पूरा करता है।

कोई भी मनुष्य प्रत्येक तम्बाकू पीने वाले आदमी का ध्यान-पूर्वक अवलोकन करके इस बात का पता लग सकता है कि तम्बाकू का नशा अन्तरात्मा की आवाज को किस हद तक दबाता है। तम्बाकू पीने वाला हरएक आदमी जब उसके अन्दर तम्बाकू पीने की इच्छा पैदा होती है तो, सामाजिक जीवन के उन अत्यन्त प्राथमिक कर्तव्यों को भूल जाता है अथवा उनकी उपेक्षा करता है जिनके पालन की

वह दूसरे लोगों से आशा रखता है और जिनका पालन वह तब तक बराबर करता है जब तक कि तम्बाकू पीकर वह अपनी अन्तरात्मा और विवेक-बुद्धि को कुंठित नहीं कर डालता। औसत दर्जे का प्रत्येक शिक्षित मनुष्य इस बात को अपने लिए अनुचित, अशिष्टतापूर्ण और अमानुषिक समझता है कि वह सुख सुविधा के लिए दूसरे लोगों के आराम तथा शान्ति में खलल डाले और दूसरों के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचावे। किसी भी आदमी को इस बात का ख्याल नहीं आवेगा कि जिस कमरे में बहुत से लोग बैठे हों उसको वह यकायक पानी से गीला करदे, न उसको इस बात का ही विचार आवेगा कि वह वहां शोर मचावे, चिल्लावे अथवा उस कमरे के अंदर ठण्डी, गरम या दुर्गन्ध पूर्ण वायु को आने दे अथवा कोई ऐसा दूसरा काम करे जिससे अन्य व्यक्तियों को असुविधा झेलनी पड़े अथवा उनका नुकसान हो जाय। लेकिन एक हजार तम्बाकू पीने वालों में से एक भी आदमी ऐसा नहीं निकलेगा जो ऐसे कमरे में अस्वास्थ्यकर एवम् बदबूदार धुआं पैदा करने में संकोच अनुभव करे कि जिसकी हवा में तम्बाकू न पीने वाली स्त्रियां और बच्चे सांस लेते हैं।

ऐसे मौकों पर शिष्टाचार की दृष्टि से तम्बाकू पीनेवाले लोग दूसरे उपस्थित व्यक्तियों से कहा करते हैं मैं तम्बाकू पीलू ? आपको कुछ आपत्ति तो नहीं है ? लेकिन इस प्रकार के प्रश्न करने वाले प्रत्येक मनुष्य को इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि उसके प्रश्न का दूसरे लोगों की ओर से साधारणतः यही उत्तर मिलेगा कि बड़े शौक से पीजिये, हमें जरा भी आपत्ति नहीं है। यद्यपि तम्बाकू पीनेवाले इसतरह तम्बाकू पीने के लिए दूसरे लोगों की स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं तथापि इससे यह नहीं कहा जा सकता कि तम्बाकू पीने वाले लोगों को दुर्गन्धित वायु में सांस लेने से तकलीफ नहीं होती है और मेज तश्तरी आंगन अथवा खिड़की में सिगरेट और बीड़ी के बदबूदार टुकड़ों को इधर-उधर पड़ा देखकर उन्हें कष्ट नहीं होता। इसके अतिरिक्त अगर इस

बात को मान भी लें कि बड़ी उम्र के स्त्री-पुरुषों ने तम्बाकू पीने के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं की तो भी इससे यह नतीजा नहीं निकलता कि उन छोटे-छोटे बच्चों को तम्बाकू के धुएं में सांस लेने से आराम मिलता है अथवा यह उनके स्वास्थ्य के लिये लाभदायक हो सकता है, जिनकी तम्बाकू पीने के बारे में अनुमति कभी मांगी ही नहीं जाती। फिर भी समाज में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो दूसरी दृष्टि से सम्मान और मनुष्यता-पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए भी छोटे-छोटे रसोई-घरों में बच्चों के साथ बैठकर भोजन करते समय तम्बाकू पीने मे संकोच नहीं करते और इस प्रकार सम्पूर्ण कमरे की हवा को तम्बाकू के धुएं से जहरीला बना देते हैं और फिर भी अपनी अन्तरात्मा की हलकी चुटकी अनुभव नहीं करते।

साधारणतः यह बात कही जाती है और मैं भी ऐसा ही कहा करता था कि तम्बाकू पीने से आदमी को दिमागी काम करने में मदद मिला करती है। यदि हम किसी व्यक्ति के बौद्धिक कार्य के केवल परिमाण का ही विचार करें—और उसके गुण-दोष की तरफ कोई ध्यान न दें—तो यह कथन बिल्कुल सत्य है। जो आदमी तम्बाकू पीता है और तम्बाकू पीने के परिणामस्वरूप जो अपने विचारों को अच्छी तरह से तौल नहीं सकता और न उनका वास्तविक मूल्य ही आंक सकता है उसको तम्बाकू पीते ही फौरन ऐसा मालूम होता है मानों उसके मस्तिष्क में असंख्य विचार उपस्थित हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि दरअसल उसके दिमाग में बहुत से विचार है बल्कि वास्तविक बात यह है कि अपने विचारों पर उसका नियंत्रण नहीं रह गया है।

जब कोई आदमी किसी काम को करता है तो उसको हमेशा इस बातका भान रहता है कि उसके अन्दर दो प्राणी हैं—एक वह जो स्वयं काम करता है, और दूसरा वह जो उस काम के गुण-दोष का विवेचन किया करता है। गुण-दोष का यह विवेचन जितने अंश तक ठीक-ठीक

और सही होगा उतने ही अंश तक वह कार्य उत्तम होगा और मन्द-मन्द गतिसे आगे बढ़ेगा। लेकिन इससे विपरीत अवस्था में परिणाम बिल्कुल उलटा होगा। यदि गुण-दोष का विवेचन करनेवाले अंग की विवेक बुद्धि किसी चीज से कुण्ठित हो गई है तो कार्य का परिमाण अधिक होने पर भी वह गुण की दृष्टि से उतना अच्छा नहीं हो सकता।

आमतौर पर लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं, और मैं भी किसी ज़माने में ऐसा कहा करता था कि अगर मैं तम्बाकू न पाऊं तो मैं कुछ भी नहीं लिख सकता। मेरी कलम रुक जाती है। मैं लिखना शुरू करता हूं लेकिन दो-चार पंक्तियां लिखने के बाद मेरा हाथ आगे नहीं बढ़ता-इस कथन का वास्तविक तात्पर्य क्या है? इस कथन का मतलब यह है कि या तो तुम्हारे पास लिखने लायक कोई बात ही नहीं है, या फिर जिस बात को तुम लिखना चाहते हो वह तुम्हारे मनमें अभी परिपक्व नहीं हो पाई है बल्कि वह अभी सिर्फ अस्पष्ट रूप में तुमको दिखलाई पड़ने लगी है। जब तुम तम्बाकू पिये हुए नहीं होते तो तुम्हारी दोष-विवेचक शक्ति तुमको यह बतला देती है। ऐसी अवस्था में अगर तम्बाकू न पिओ तो या तो तुम अपना शुरू किया हुआ लेखन कार्य बन्द कर दोगे या तुम तब तक के लिए धैर्य धारण कर लोगे जबतक कि तुम अपने विचार का अपने मस्तिष्क में स्पष्ट न करलो। तुम्हारे दिमाग में अस्पष्टतापूर्वक जो विचार आया होगा उसकी गहराई में उतरने का प्रयत्न करोगे, ऐसा करते समय जो बाधाएं आयेंगी उन पर विचार करोगे और अपना सम्पूर्ण ध्यान उस विचार को स्पष्ट करने में लगा दोगे। लेकिन ज्यों ही तुम तम्बाकू पी लेते हो तुम्हारी गुण-दोष विवेचक शक्ति कुण्ठित हो जाती है और उसके साथ-साथ तुम्हारे लिखने के मार्ग में आने वाली बाधाएं भी दूर हो जाती हैं। तम्बाकू पीकर प्रमत्त बनने से पहले जो बात तुम को निरर्थक मालूम होती थी, वह अब तुम्हें महत्त्वपूर्ण मालूम होने लगती है: पहले जो बात अस्पष्ट दिखलाई देती थी वह अब वैसी प्रतीत नहीं

होती; पहले जो बाधाएं नजर आती थीं वे सब गायब हो जाती हैं; और तुम लिखने का कार्य शुरू कर देते हो और शीघ्र गति से पन्ने के पन्ने लिख डालते हो।

(४)

जब हम थोड़ी मात्रा में शराब या तम्बाकू पीते हैं तो उसका नशा भी हमें बहुत थोड़ी मात्रा में चढ़ता है। अब सवाल यह है कि इस हल्के नशे से हमारे शरीर में जो थोड़ा सा—अत्यन्त अल्प—परिवर्तन हो जाता है, क्या वह किन्हीं महत्त्वपूर्ण परिणामों को उत्पन्न कर सकता है ? आमतौर पर यह कहा जाता है कि "अगर कोई आदमी इतनी अधिक तम्बाकू या गांजा पीता है या शराब का इतना अधिक नशा करता है कि वह धरती पर गिर पड़े और बेहोश हो जाय तो इसके परिणाम जरूर भयंकर हो सकते हैं। लेकिन जो आदमी थोड़ी सी तम्बाकू या शराब पीकर हल्का नशा किया करता है, उसके लिए निश्चय ही ऐसे गम्भीर परिणाम कभी नहीं निकल सकते।" लोगों की आज-कल ऐसी धारणा बन गई है कि हल्का नशा कर लेने —थोड़ी-सी शराब और तम्बाकू पी लेने—और अपनी विवेक-बुद्धि पर थोड़ा-सा पर्दा डाल देने से कोई महत्त्वपूर्ण असर नहीं पड़ता। लेकिन उनकी यह धारणा ठीक वैसी ही है जैसी किसी मनुष्य की यह धारणा कि घड़ी को पत्थर पर जोरों से पटक देने से घड़ी को नुकसान हो सकता है, लेकिन यदि घड़ी के अन्दर थोड़ी सी बारीक धूल घुस जाने दी जावे तो घड़ी को किसी तरह का नुकसान नहीं पहुंच सकता।

लेकिन प्यारे पाठको ? आप इस बात को हमेशा स्मरण रखिये कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का संचालन हाथों, पैरों अथवा पीठ के द्वारा नहीं बल्कि अन्तरात्मा के द्वारा होता है। क्योंकि अन्तरात्मा में एक खास उथल-पुथल होने पर ही कोई आदमी अपने हाथों अथवा पैरों

के द्वारा किसी कार्य को करने लगता है। यह उथल-पुथल ही मनुष्य के समस्त भावी कार्यों की दिशा निर्धारित करती है। फिर भी इस प्रकार की उथल-पुथल हमेशा अत्यन्त सूक्ष्म और करीब-करीब अगोचर होती है।

ब्रूलोफ* ने एक दिन अपने एक शिष्य द्वारा निर्मित चित्र में थोड़ासा सुधार किया था। शिष्य की नजर ज्यों ही उस परिवर्तित चित्र पर पड़ी, त्यों ही वह जोर से बोल उठा—"ओह, आपने तो इस को जरा-सा छुआ ही था। लेकिन अब तो यह बिल्कुल दूसरी ही चीज बन गई है।" ब्रूलोफ ने उत्तर दिया, "छोटी-छोटी रेखाओं से ही कला का आरम्भ होता है।"

ब्रूलोफ का उपरोक्त कथन न सिर्फ कला के सम्बन्ध में, बल्कि सम्पूर्ण मनुष्य जीवन के सम्बन्ध में सर्वथा सत्य है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि छोटी-छोटी बातों से ही सच्चे मनुष्य-जीवन का आरम्भ होता है—अर्थात् जो बात हम को अत्यन्त सूक्ष्म मालूम होती हैं और जो परिवर्तन हमें अतीव अल्प दिखाई पड़ते हैं, उन्हीं से सच्चे मनुष्य जीवन का आरम्भ होता है। जहां बड़े-बड़े बाह्य परिवर्तन होते हैं—लोग इधर-उधर दौड़ते-भागते हैं, झगड़ते हैं। दंगा-फसाद करते हैं और एक दूसरे की हत्या करते हैं—वहां सच्चे मनुष्य-जीवन का अस्तित्व असम्भव है। बल्कि सच्चा मनुष्य-जीवन वहीं सम्भव है जहां मनुष्यों के जीवन में छोटे, अत्यन्त छोटे और सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन हुआ करते हैं।

---

*के. पी. ब्रूलोफ रूस का एक सुप्रसिद्ध चित्रकार था। उसका जीवन काल सन् १७९९-१८५२ था।

रास्कोल्निकोफ*का जीवन उस समय सच्चा जीवन नहीं था, जब उसने बुढ़िया औरत अथवा उसकी बहिन की हत्या की। जब उसने उस बुढ़िया की—और विशेषतः जब उस बुढ़िया की बहिन की—हत्या की, तब यह उसका सच्चा जीवन न था। उसने एक मशीन की भांति वही कार्य किया जिसे किये बिना वह रह नहीं सकता था—अर्थात् वह दीर्घ काल से पिस्तौल में भरे हुए कारतूस को छोड़ कर ही रहा। एक बुड्ढी औरत की वह हत्या कर चुका था, दूसरी उसके सामने खड़ी थी और वह अपने हाथ में कुल्हाड़ा लिये हुए था।

रास्कोल्निकोफ उस समय सच्चा मनुष्य जीवन नहीं बिता रहा था, जब कि उस बुढ़िया औरत की बहिन से उसका साक्षात्कार हुआ था। बल्कि वह तभी सच्चा और मनुष्योचित जीवन बिता रहा था जब उसने किसी बुड्ढी औरत की हत्या नहीं की थी, न किसी की हत्या करने के संकल्प से किसी अपरिचित व्यक्ति के घर में कदम नहीं रक्खा था, अपने हाथ में कुल्हाड़ा नहीं पकड़ा था और अपने ओवरकोट के भीतर की तरफ को लटकाने के लिए रस्सी का फन्दा नहीं बांधा था। निस्सन्देह वह उस समय सच्चा मनुष्योचित जीवन बिता रहा था जब वह अपने कमरे में गद्दे पर लेटे-लेटे इस बात पर विचार कर रहा था कि उसको पीटर्सबर्ग में रहना चाहिए अथवा नहीं तथा उसको अपनी मां से अपने खर्च के लिए द्रव्य लेना चाहिए अथवा नहीं, और साथ ही तरह-तरह की दूसरी समस्याओं पर—जिनका उन बुड्ढी औरत से कतई कोई सम्बन्ध नहीं था—विचार करने में वह तल्लीन था। उस समय उसको उस बुड्ढी औरत का अणुमात्र खयाल नहीं था, न उसके मन में यह विचार ही उत्पन्न हुआ था कि क्या यह न्याय्य

---

*डास्टोवस्की के "क्राइम एंड पनिशमेण्ट नामक उपन्यास का नायक। इस उपन्यास का हिन्दी अनुवाद "पवित्र पापी" के नाम से गंगा पुस्तक माला, लखनऊ से प्रकाशित हो चुका है।

और उचित है कि एक मनुष्य की इच्छा-पूर्ति के लिए दुनिया से दूसरे अनावश्यक और हानिकर मनुष्य का नामोनिशां मिटा दिया जाय। लेकिन इसके कुछ ही क्षण बाद उसने इस प्रश्न का—उस मानसिक प्रदेश में जो मनुष्य के शारीरिक कार्यों से बिल्कुल स्वतंत्र होता है—निपटारा कर दिया कि वह उस बुढ़िया औरत को मार डालेगा अथवा नहीं। इस प्रश्न का निपटारा उस समय नहीं हुआ जब कि वह एक बुढ़िया औरत की हत्या कर चुका था और हाथ में कुल्हाड़ा लिये हुए दूसरी बुढ़िया औरत के सामने खड़ा था। बल्कि इस प्रश्न का निपटारा उसी समय हो चुका था जब वह गद्दे पर चुपचाप, बिना हाथ पैर हिलाये-डुलाये बैठा-बैठा मन-ही-मन कुछ सोच-विचार कर रहा था। उस समय उसकी अन्तरात्मा कार्य में संलग्न था और उस अन्तरात्मा में सूक्ष्म—हां, अत्यन्त सूक्ष्म—परिवर्तन और उलट फेर हो रहे थे। इस तरह के अवसरों पर मनुष्य को स्पष्ट एवम स्वच्छ विचार सब-से बड़ी आवश्यकता हुआ करती है ताकि वह अपने सामने उपस्थित समस्या पर ठीक-ठीक और यथार्थ निर्णय दे सके। और यदि ठीक इस प्रकार के अवसरों पर शराब का एक गिलास या एक सिगरेट अथवा एक बीड़ी पी ली जाय तो उस समस्या के हल होने में बाधा उपस्थित हो जाती है; मनुष्य का निर्णय कार्य स्थगित हो जाता है, अन्तरात्मा और विवेक बुद्धि कुंठित हो जाती है और मनुष्य जल्दबाजी में आकर ऐसा निर्णय कर डालता है जो मनुष्योचित नहीं बल्कि मनुष्य की हीन अर्थात् पशु-प्रकृति के अनुकूल होता है; जैसा कि रास्कोल्निकोफ के उदाहरण में हुआ।

ऐसे अवसरों पर अन्तरात्मा में होने वाले उलट-फेर और परिवर्तन सूक्ष्म और अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं; लेकिन इन परिवर्तनों के जो परिणाम होते हैं वे अत्यन्त विशाल और भीषण होते हैं। जब मनुष्य किसी बात का निश्चय करके तदनुसार कार्यारम्भ कर देता है तो उसके परिणामस्वरूप संसार में अनेक भौतिक परिवर्तन हो सकते हैं।

उदाहरणार्थ घर-बार, धन-दौलत और लोगों के शरीर नष्ट हो सकते हैं। लेकिन फिर भी मनुष्य की अन्तरात्मा के गूढ़तम आदर्शों में जो बात छिपी हुई थी उससे बढ़कर महत्त्वपूर्ण घटना घटित नहीं हो सकती। भौतिक जगत में जो-कुछ होने वाला होता है, अन्तरात्मा पहले से उसकी मर्यादाएं निश्चित कर देती है।

लेकिन अन्तरात्मा में होने वाले इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म उलट-फेरों और परिवर्तनों से ही कल्पनातीत महत्त्व रखने वाले अनगिनत परिणाम पैदा हो सकते हैं।

मेरे उपर्युक्त कथन से पाठक इस बात का अन्दाजा हर्गिज न लगावें कि यहां पर मैं जो कुछ कह रहा हूं उसका संकल्प-स्वातंत्र्य अथवा निश्चयवाद (determinism) से किसी तरह का कोई सम्बन्ध है। जहां तक मेरे अभिप्राय का सम्बन्ध है वहां तक मैं कह सकता हूं कि इस प्रश्न पर वाद-विवाद करना बिल्कुल व्यर्थ है। दूसरी समस्याओं के लिए भी संकल्प-स्वातंत्र्य अथवा निश्चयवाद सम्बन्धी वाद-विवाद में पड़ने से कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। मैं इस प्रश्न का निपटारा करने नहीं बैठा हूं कि कोई आदमी अपने मनोवांछित संकल्प के अनुसार कार्य कर सकता है अथवा नहीं, क्योंकि मेरी सम्मति में इस प्रश्न को इस रूप में लोगों के सामने रखना ही गलत है। बल्कि मैं तो सिर्फ यह कह रहा हूं कि जब अन्तरात्मा में होनेवाले इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म उलट-फेरों और परिवर्तनों का मनुष्यों के कार्यों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है, तो यह बात स्पष्ट है कि [चाहे हम इस बात को मानें या न मानें कि इच्छा-स्वातंत्र्य (Free-will) का अस्तित्व है अथवा नहीं] हमें अपनी अन्तरात्मा की उस अवस्था के विषय में जिसमें कि सूक्ष्म उलट-फेर हुआ करते हैं उसी तरह विशेष रूप से जागरूक और सावधान रहना चाहिए जिस तरह किसी चीज को तराजू से तोलते समय हम पहले तराजू के बारे में जागरूक और सतर्क रहते हैं। जहां तक हमारा बस चले वहां तक

हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम स्वयं अपने आपको और दूसरे लोगों को ऐसी अवस्था में रखने का प्रयत्न करें जिसमें अन्तरात्मा की निर्दोष प्रकृति के लिए विचारों की जो स्पष्टता और सूक्ष्मता आवश्यक होती है वह खंडित न होने पावे। हम को इसके प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए। अर्थात् नशीली चीजों का इस्तेमाल करके अन्तरात्मा के कार्य में बाधा डालने अथवा उसे अस्तव्यस्त करने की कोशिश नहीं करना चाहिए।

क्योंकि मनुष्य के अन्दर आध्यात्मिक और पाशविक दोनों तरह के प्राणी विद्यमान हैं। किसी घड़ी को हम दो तरह से चला सकते हैं—एक तो उसके कांटों को घुमाकर और दूसरे उसके मुख्यचक्र को चाबी लगा कर। इसी तरह मनुष्य भी दो तरह के प्रभावों में आकर काम कर सकता है—अर्थात् या तो उन बातों के प्रभाव में आकर जो उसके आध्यात्मिक अंश पर असर डालती हैं, या उन बातों के प्रभाव में आकर जो उसके शारीरिक अंश पर प्रभाव डालती हैं। लेकिन जिस तरह घड़ी के लिए यह बात उत्तम है कि उसको उसके अन्दर के यन्त्रों द्वारा परिचालित किया जाय, उसी तरह मनुष्य के अपने लिए या दूसरे के लिए यह बात सर्वथा उचित है कि वह अपने कार्यों का संचालन अपनी अन्तरात्मा के आदेशानुसार करे। और जिस प्रकार घड़ी के उस पुर्जे की मनुष्य को विशेष रूप से सावधानी रखनी पड़ती है जिससे कि वह घड़ी के आन्तरिक यंत्रों का भली-भांति संचालन करता है; उसी तरह मनुष्य को अपनी अन्तरात्मा को पवित्र और स्पष्ट और निर्मल रखने के लिए सब से अधिक सावधान रहना चाहिए क्योंकि अन्तरात्मा ही मनुष्य के समस्त अंगों को कार्य प्रवृत्त करती है। इस बारे में किसी तरह की शंका पैदा नहीं हो सकती। हर एक आदमी इस बात को जानता है। लेकिन फिर भी लोगों को अपनी अन्तरात्मा को धोखा देने की आवश्यकता पड़ जाया करती है। लोग इस बात के लिए इतने उत्सुक नहीं होते कि उनकी अन्तरात्मा ठीक

प्रकार से कार्य करे, जितन इस बात के लिए कि जो कुछ कार्य वे किया करते हैं वह उनको सर्वदा उचित प्रतीत हो। इसलिए वे जान-बूझ कर ऐसी नशीली चीजों का इस्तेमाल करते हैं जो उनकी अन्तरात्मा के ठीक प्रकार से कार्य करने में बाधा पहुंचाने वाली होती हैं।

(५)

लोग इसलिए कभी-कभी शराब या तम्बाकू नहीं पीते कि सुस्ती दूर हो, फुर्ती आ जाय। यह बात भी नहीं कि नशा करने में आनन्द आता है। असल में वे अन्तरात्मा की आवाज को मंद करने के लिए नशा करते हैं। और यदि वास्तविकता यही हो तो, इसके परिणाम कितने भयंकर हो सकते हैं। जरा सोचिए तो उस इमारत की क्या दशा होगी यदि उसको बनाने वाले लोग दीवार को सीधी बनाने के लिए सीधी और सख्त नींव बनावें, बल्कि नरम नींव भरें जो दीवार के बांके-तिरछेपन के अनुसार आगे पीछे हो जाय; अथवा सही कोण बनाने के लिए समचौरस जमीन के टुकड़े काटने के बजाय ऐसे टुकड़े काट डालें जो बांके–तिरछे कैसे भी कोण के अनुकूल घटाये-बढ़ाये जा सकें।

किन्तु नशा करनें की आदत की बदौलत जीवन में ठीक यही हो रहा है। जीवन अन्तरात्मा के अनुसार नहीं होता तो अन्तरात्मा को जीवन के अनुसार ढाल लिया जाता है।

व्यक्तियों के जीवन में यह हो रहा है और सारी मानव जाति के जीवन में भी यही हो रहा है क्योंकि आखिर मानव जाति का जीवन भी व्यक्तियों के जीवन ही से तो बना है।

अपनी अन्तरात्मा को नशीली वस्तुओं का शिकार बनाने के सम्पूर्ण महत्त्व को समझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की विविध आध्यात्मिक अवस्थाओं को सावधानी के साथ याद करना चाहिए। हर एक व्यक्ति को ज्ञात ही होगा कि

उसके जीवन के प्रत्येक काल में कुछ खास नैतिक प्रश्न उपस्थित हुए थे, जिनको उसे हल करना चाहिए था और जिनके हल होने पर भी उसके जीवन का समस्त हित निर्भर करता था। इन प्रश्नों को हल करने के लिए चित्त की भारी एकाग्रता की आवश्यकता थी, चित्त को इस प्रकार एकाग्र करना एक प्रकार का श्रम होता है। हर प्रकार के श्रम में खास कर प्रारम्भ में ऐसा समय आता है जब काम मुश्किल और कष्टदायक प्रतीत होता है और जब मानव दुर्बलता उस काम को छोड़ देने की प्रेरणा करती है। शारीरिक कार्य प्रारम्भ में कष्टदायक प्रतीत होता है, मानसिक कार्य और भी अधिक कष्टदायक प्रतीत होता है। जैसा कि लेसिंग ने लिखा है, जहां विचार कठिन होने लगता है वहां स्वभावतः लोग सोचना बन्द कर देते हैं, किन्तु मैं यह कहता हूं उसी जगह सोचने का काम लाभदायक होने लगता है। मनुष्य अनुभव करता है कि उसके सामने जो प्रश्न हैं उनको हल करने के लिए श्रम की—बहुधा कष्टदायक काम की—आवश्यकता होगी और वह ऐसी मेहनत से बचना चाहता है। यदि उसके पास अपनी बौद्धिक शक्तियों को प्रमत्त बनाने के साधन न हों तो अपने सामने उपस्थित प्रश्नों को वह भुला नहीं सकता और उनको हल करने की आवश्यकता बलात् उसके सामने आ खड़ी होगी। किन्तु मनुष्य को ऐसे साधन का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वह इन प्रश्नों को अपने सामने से हटा दे सकता है और वह उस साधन का उपयोग करता है। ज्योंही उसके सामने हल होने के लिए प्रश्न उपस्थित होते हैं और उसे सताने लगते हैं, वह इस साधन का उपयोग करता है और कठिन प्रश्नों के कारण पैदा होने वाली अशान्ति से बच जाता है। उन प्रश्नों को हल करवाने के लिए अन्तरात्मा की पुकार रुक जाती है और जब तक ज्ञानोदय का नया काल नहीं आता वे प्रश्न ज्यों-के-त्यों बिना हल हुए पड़े रहते हैं। किन्तु जब ज्ञानोदय का काल आता है तो वही क्रिया पुनः दुहराई जाती है और मनुष्य

महीनों, सालों यहां तक कि सारी उम्र इन नैतिक प्रश्नों के सामने खड़ा रहता है और उनको हल करने की दिशा में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता। फिर भी इस प्रश्नों के हल होने पर ही जीवन की सारी गति निर्भर करती है।

एक आदमी है जो बहुमूल्य मोती प्राप्त करने के लिए किसी तलैया के गन्दे पानी का पेंदा देखना चाहता है किन्तु वह पानी में घुसना पसन्द नहीं करता और हर बार जब गन्दलापन बैठने लगता है और पानी निर्मल होने लगता है तो वह उसको हिला देता है। मनुष्य के जीवन में भी यही होता है। बहुत से मनुष्य जीवन भर नशा करते रहते हैं और जीवन के जिस स्पष्ट और असंगत दृष्टिकोण को एक बार अपना लेते हैं उसी के साथ चिपटे रहते हैं और जब कभी प्रकाश का काल आता है तो हरबार उसी दीवार से टकराते हैं जिससे वह दस या बीस वर्ष पहले टकरा चुके थे, जिसको वे तोड़ नहीं पाते क्योंकि वे विचार की उस तीक्ष्णता को कुण्ठित बना लेते हैं जिसके द्वारा कि उस दीवार को तोड़ा जा सकता है।

प्रत्येक मनुष्य को उन वर्षों की अपनी अवस्था पर विचार करना चाहिए जिनमें वह शराब या तम्बाकू पीता था। उसे दूसरे लोगों के अनुभव से भी इस बारे में सोचना चाहिए। उसे ज्ञात होगा कि जो लोग नशा करते हैं और जो लोग नशा नहीं करते उनके बीच एक निश्चित अन्तर है। मनुष्य जितना ही अधिक नशा करता है, उतना ही नैतिक निगाह से वह जड़ होता है।

[६]

जैसा कहा जाता है अफीम और गांजे के नशे का व्यक्तियों पर भयंकर असर होता है। हम को मालूम है कि खुलकर पीने वाले शराबियों के लिए शराब के क्या परिणाम होते हैं। किन्तु बहुसंख्यक

आदमी और खास कर हमारे पढ़े-लिखे कहलाने वाले लोग शराब आदि मादक द्रव्यों और तम्बाकू का थोड़ी-थोड़ी मात्रा में जो सेवन करते हैं, और जिसमें कोई हर्ज नहीं समझा जाता उसका हमारे सारे समाज के लिए कहीं अधिक भयंकर परिणाम होता है।

यदि हम इस बात को मान लें, और हमें मानना पड़ेगा कि राजनीतिक, सरकारी, वैज्ञानिक, साहित्यिक और कला सम्बन्धी कार्य जिनसे समाज का पथ-प्रदर्शन होता है, अधिकतर ऐसे लोगों द्वारा किये जाते हैं, जिनके दिमाग की हालत सामान्य नहीं होती, अर्थात् वे शराब पिये हुए होते हैं, तो स्वभावतः इसके परिणाम भयंकर होंगे।

आमतौर पर यह खयाल किया जाता है कि सम्पन्न वर्गों के अधिकांश लोगों की भांति जो आदमी भोजन के समय हर बार मादक द्रव्य का सेवन करता है, वह दूसरे दिन काम के समय बिल्कुल सामान्य और होश की हालत में आ जाता है। किन्तु यह खयाल बिल्कुल गलत है। जिस आदमी ने कल शराब का एक गिलास पिया होता है दूसरे दिन आम तौर पर वह अलसाई हुई हालत में होता है, उसके शरीर के अवयव ढीले पड़ जाते हैं, क्योंकि उत्तेजना के बाद ऐसा होता भी है। इस प्रकार उसका दिमाग भी थक जाता है और तम्बाकू पीने से इस हालत में वृद्धि ही होती है। जो आदमी थोड़ी मात्रा में नियमित शराब या तम्बाकू पीता है, उसके दिमाग को ठीक हालत में लाने के लिए उसको कम-से-कम एक सप्ताह या इससे भी अधिक समय तक शराब और तम्बाकू से दूर रहना होगा, किन्तु ऐसा शायद ही कभी होता है।

किन्तु जो लोग शराब और तम्बाकू नहीं पीते, वे नैतिक निगाह से बहुधा उन लोगों से निम्न सतह पर क्यों होते हैं जो शराब और तम्बाकू पीते हैं। और क्या कारण है कि जो शराब और तम्बाकू पीते हैं वे बहुधा मानसिक और नैतिक दोनों प्रकार के उच्चातिउच्च

गुणों का परिचय देते हैं।

इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो हम यह नहीं जानते कि जो शराब और तम्बाकू पीते हैं, वे यदि इन पदार्थों का सेवन न करते होते तो कितने ऊंचे उठे हुए होते। दूसरे नैतिक-गुण सम्पन्न मादक द्रव्यों के हानिकर प्रभाव के बावजूद यदि बड़े-बड़े काम कर डालते हैं तो इसीसे यह सिद्ध हो जाता है कि यदि मादक द्रव्यों का सेवन न करते होते तो और भी बड़े बड़े काम करने में समर्थ हुए होते। जैसा कि एक मित्र ने मुझे बताया कि बहुत सम्भव है कि कि काण्ठ यदि इतनी अधिक तम्बाकू न पीता होता तो उसके अन्य ग्रन्थ इतने अजीब और बुरे तरीके से न लिखे गये होते। आखिरी बात यह है कि जितना ही मनुष्य का मानसिक और नैतिक धरातल नीचा होगा उतना ही वह अपनी जीवनचर्या और अन्तरात्मा के बीच कम संघर्ष अनुभव करेगा और इसलिए उसको नशीली वस्तुओं की भी कम आवश्यकता होगी। इसके बिपरीत यही कारण है कि जो लोग भावुक स्वभाव के होते हैं, उन्हें अपने जीवन और अन्तरात्मा के द्वन्द का फौरन अनुभव होता है और वे उद्विग्न हो जाते हैं और बहुधा मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं और उनके द्वारा विनष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार हमारे समाज में जो काम होते हैं, चाहे उनको करने वाले हमारे शासक और शिक्षक हों, चाहे शासित और शिष्य, उनमें से अधिकतर काम उस समय होते हैं, जब उनको करने वालों का मस्तिष्क ठीक ठिकाने नहीं होता।

इसको आप विनोद या अत्युक्ति न समझिए, हमारे जीवन में जो गड़बड़ और पंगुपन दिखाई देता है, उसका मुख्य कारण यह है कि अधिकतर लोग निरन्तर नशे की हालत में रहते हैं। यदि लोग शराब से बेहोश न होते, तो क्या सम्भवतः वे मारकाट और खून-खराबी के उन कामों को करते जो आजकल वे कर रहे हैं ?

बिना किसी आवश्यकता के एक कम्पनी बनाई जाती है, पूंजी

इकट्ठी की जाती है, मजदूर जुटाये जाते हैं, अन्दाज लगाये जाते हैं और योजनायें तैयार की जाती हैं। एक ऊंची बुर्ज बनाने के लिए हजारों टन लोहा और लाखों दिन मजदूरों का श्रम खर्च किया जाता है। लाखों आदमी इस बुर्ज पर चढ़ते हैं, थोड़ी देर वहां ठहरते हैं और फिर वापस नीचे उतर आते हैं। लोगों के दिलों में इस इमारत को देखकर इसके अलावा और कोई ख्याल पैदा नहीं होता कि दूसरे स्थानों में इससे भी बड़ी इमारतें बनाई जायं। क्या ठीक मस्तिष्क वाले ऐसा कर सकते हैं? दूसरा उदाहरण लीजिए। वर्षों से यूरोप के लोग जन-संहारक साधनों की खोज में जुटे हुए हैं और ज्योंही बच्चे जवान होते हैं, उन्हें अधिक से अधिक संख्या में जन-संहार की शिक्षा दी जाती है। हर एक आदमी जानता है कि बर्बर लोगों का हमला नहीं होने वाला है, किन्तु विभिन्न सभ्य और ईसाई ये तैयारियां आपस ही में एक दूसरे के विरुद्ध करते रहते हैं। सब जानते हैं कि यह कष्टदायक, असुविधाजनक, हानिकारक, अनैतिक अपवित्र और अविवेकपूर्ण कार्य है, किन्तु फिर भी सब लोग पारस्परिक संहार में संलग्न हैं। कुछ यह निश्चय करने के लिए कि कौन किसके साथ मिलकर किसको मारे, राजनैतिक गठबन्धनों की योजना करते हैं। कुछ उन लोगों का पथ-प्रदर्शन करते हैं जिन्हें संहार करने की शिक्षा दी जाती है। और शेष अपनी इच्छा, अपने अन्तःकरण और विवेक के विरुद्ध इन संहारक तैयारियों में हिस्सा बंटाते हैं। क्या ठीक मस्तिष्क वाले लोग ऐसा कर सकते हैं? केवल शराबी लोग ही, जिनके दिमाग की हालत कभी ठीक नहीं रहती, ऐसे काम कर सकते हैं और जीवन और अन्तरात्मा के द्वन्द्व की इस भयंकर स्थिति में रह सकते हैं। न केवल इस उदाहरण में ही, बल्कि अन्य दिशाओं में भी हमारी तरह के आदमी इसी भयंकर स्थिति में पड़े हुए हैं।

मेरा खयाल है कि आज से पहले अपनी अन्तरात्मा की पुकार और

लोगों के कार्यों में इतना विरोध कभी नहीं रहा।

मानवता को मानो आज काठ मार गया है। ऐसा मालूम होता है मानों कोई बाह्य कारण उसको अपने आदर्शों के अनुसार स्वाभाविक स्थिति में पहुंचने से रोक रहा है और वह कारण यदि उसे एकमात्र कारण न कहा जाय तो मुख्य कारण तो कहना ही पड़ेगा, है लोगों की प्रमत्त शारीरिक अवस्था, जो शराब और तम्बाकू के कारण हमारे अधिकांश लोगों की हो रही है।

इस भयंकर बुराई से जिस दिन मुक्ति मिलेगी, उस दिन मानवता के लिए नये युग का प्रारम्भ होगा और वह युग जल्दी ही आ रहा प्रतीत होता है। बुराई को पहचान लिया गया है। मादक द्रव्यों के इस्तेमाल सम्बन्धी हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन हो चुका है। लोग इनकी भयंकर हानियों को समझ चुके हैं और उनकी ओर निर्देश करने लगे हैं। और दृष्टिकोण का यह प्रायः अगोचर परिवर्तन मनुष्यों को अनिवार्यतः मादक द्रव्यों के पाश से मुक्त कर देगा, और अन्तरात्मा की आवाज सुनने के लिए उनके कान खुल जांयगे और वे अपनी अनुभूति के अनुकूल अपनी दिनचर्या बिताने लगेंगे।

मालूम होता है कि ऐसा होना शुरू भी हो गया है किन्तु जैसा कि हमेशा होता है, तमाम निम्न वर्गों पर असर होने के बाद अब केवल उच्च वर्गों में इस क्रिया का प्रारम्भ हो रहा है।

: ३ :

उद्योग और आलस्य

[१]

"In the sweat of thy face shall thou eat bread, till thou return unto ground; for out of it was thou taken."

—Gen. III. 19.

पञ्च महाभूतों से तुम्हारे शरीर की सृष्टि हुई है, इसलिए जब तक तुम्हारा शरीर इन पञ्चभूतों में पुनः विलीन न हो जाय, तब तक तुम निरन्तर परिश्रम करके—पसीना बहा कर—अपना उदर पोषण करो। —जिनेसिस, भाग ३, अध्याय १६।

टी. मिहालोविच बोण्डारीफ़ ने एक पुस्तक लिखी है। इसका शीर्षक है 'उद्योग और आलस्य'; और इस पर बाइबिल का उपरोक्त उद्धरण दिया गया है। इसकी हस्तलिखित लिपि का मैंने अवलोकन किया है। भाषा के सौंदर्य, स्पष्टता और ओज की दृष्टि से यह पुस्तक मुझको अत्यन्त चमत्कारी मालूम हुई। इसकी प्रत्येक पंक्ति से लेखक के विश्वास की सत्यता स्पष्ट रूप से टपकती है। लेकिन सबसे बड़ी बात यह है कि इस पुस्तक में जो मूल विचार प्रतिपादित किया गया है, वह बड़ा महत्त्वपूर्ण, गहरा और सत्य है।

श्रीयुत टी. एम. बोण्डारीफ़ का जन्म सन् १८२० में एक गुलाम खानदान में हुआ था। सन् १८५८ में वह २५ वर्ष के लिए फौज में नौकरी करने को भेज दिये गये। लेकिन वहां जाकर वे 'सबारेरियन' सम्प्रदाय (जो बाइबिल के पुराने संस्करण को ही प्रामाणिक मानता था।

और दूसरी अनेक बातों में यहूदी धर्म का अनुसरण करता था) के अनुयायी बन गये। परिणामस्वरूप १८६७ में वे साइबेरिया के ऊदीना नामक स्थान को निर्वासित कर दिये गये। यहां पर उन्होंने एक किसान के रूप में भारी उद्योग और प्रश्रिम करके अपने लिए एक अच्छा सुखदायक परिवार बसा लिया था। लेकिन यहां पर भी उन्होंने अपने 'रोटी के लिए मजदूरी' के सिद्धान्त का प्रचार करनेका प्रयत्न किया, जिसकी वजह से वे पुनः दरिद्र बन गये। उनकी उपरोक्त पुस्तक अधिकारियों की कोप-दृष्टि की वजह से रूस में प्रकाशित नहीं हो सकी, लेकिन फ्रेंच ओर दूसरी भाषाओं में उसके अनुवाद प्रकाशित किये जा चुके हैं। अपनी इस पुस्तक का दूसरा शीर्षक बोण्डारीफ़ ने 'कृषक की विजय' भी रक्खा है।

इस पुस्तक का आधार-भूत विचार निम्न लिखित है—मनुष्य-जीवन-सम्बन्धी सब बातों में इस जानकारी का विशेष महत्त्व नहीं है कि कौन सी वस्तु अच्छी है और कौन सी बुरी। बल्कि जानने की बात तो यह है कि संसार में जितनी भी उत्तम और आवश्यक बातें हैं उनमें सबसे पहले किसको महत्त्व दिया जाय और क्रमानुसार आगे बढ़ते हुए सबसे अन्त में किसको रखा जाय।

अगर सांसारिक विषयों में यह बात इतनी महत्त्वपूर्ण है, तो श्रद्धा सम्बन्धी और आध्यात्मिक विषयों में, जिनके द्वारा मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का निश्चय करता है, इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ा-चढ़ा है।

आरम्भिक गिर्जे का टेटिन नामक एक उपदेशक कहता है कि मनुष्यों के कष्टों का कारण उनका ईश्वर को न पहचानना उतना नहीं है, जितना उनका एक झूठे ईश्वर में विश्वास रखना, और इस प्रकार जो वास्तव में ईश्वर नहीं है उसको ईश्वर की भांति पूजना है। ठीक यही बात मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों सम्बन्धी धारणाओं पर भी लागू होती है। मनुष्यों पर आपत्तियां पड़ने और उनके अन्दर बुराइयां पैदा होने

की वजह यह नहीं है कि वे अपने कर्त्तव्यों को नहीं पहचानते । बल्कि उन पर आपत्तियां आने और उनके अन्दर बुराइयां पैदा होने की खास वजह यह है कि उन्होंने झूठे कर्त्तव्यों को अंगीकार कर रक्खा है और उन बातों को उन्होंने कर्त्तव्य बना रक्खा है जिनका वस्तुतः उनमें समावेश नहीं होता और जो वास्तव में उनका सबसे पहला कर्त्तव्य है, उसको वे अपना कर्त्तव्य नहीं मानते ।

बोण्डारीफ़ अपनी पुस्तक में इस बात की घोषणा करता है कि मनुष्यों के जीवन में बुराइयां और आपत्तियां इसलिए आती हैं कि उन्होंने बहुत से हानिकर और निरर्थक नियमों को धार्मिक कर्त्तव्यों का रूप दे रक्खा है और अपने एवम् दूसरे लोगों की दृष्टि से ओझल कर रखा है । उस प्रमुख, परमावश्यक और स्पष्ट कर्त्तव्य को जिसका उल्लेख बाइबिल में सबसे पहले किया गया है—अर्थात् 'मनुष्य को चाहिए कि वह अपने शरीर से पसीना बहा कर अपना उदर-पोषण करे ।"

जो लोग उस बात में विश्वास रखते हैं कि बाइबिल में लिखे हुए शब्द ईश्वरीय शब्द हैं और ईश्वर के शब्द पवित्र एवम् अचूक होते हैं, उनके लिए तो बाइबिल में स्वयं ईश्वर ने जो आज्ञा दे रक्खी है और जिसका कहीं खण्डन नहीं हुआ है उसकी न्यायोचितता स्वयं सिद्ध है । लेकिन जो लोग बाइबिल पर विश्वास नहीं रखते उनके सामने इस ईश्वरीय आदेश का महत्त्व और औचित्य दूसरी तरह से सिद्ध किया जा सकता है । वह इस प्रकार कि मनुष्य जाति की आधुनिक अवस्थाओं का अनुसन्धान किया जाय, जैसा कि श्री बोण्डरीफ़ ने अपनी पुस्तक में किया है । सिर्फ जरूरत इस बात की है कि उस ईश्वरीय आदेश को अलौकिक नहीं बल्कि मानव-बुद्धिमत्ता का सीधा-सादा चिन्ह समझा जाय । लेकिन दुर्भाग्य से इस प्रकार के अनुसन्धान-कार्य में हमारे सामने हमेशा एक बड़ी भारी बाधा उपस्थित हो जाया

करती है। वह यह है कि हमारे धर्मगुरुओं ने धर्म-ग्रन्थों के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर उनका इतना मूर्खतापूर्ण और दूषित अर्थ कर डाला है कि हममें से बहुत से लोग ज्योंही इस बात को सुनते हैं कि अमुक सिद्धान्त का प्रतिपादन तो धर्म-ग्रन्थों के आदेशों में भी विद्यमान है, त्यों ही हम इस बात को उस सिद्धान्त पर अविश्वास करने का पर्याप्त कारण समझ लेते हैं।

"मैं पवित्र धर्मिक ग्रन्थों की पर्वाह क्यों करूं? मैं तो जानता हूं कि उन सब के अन्दर कूड़ा करकट भरा है। और उनमें से तुम अपनी-अपनी इच्छानुसार चाहे जिस चीज को साबित कर सकते हो।" ऐसी बातें अक्सर उन लोगों के मुंह से सुनाई देती है जो धर्म-ग्रन्थों में विश्वास नहीं रखते और धर्म को एक अनुपयोगी वस्तु समझते हैं।

लेकिन उनकी यह धारणा युक्ति-युक्त नहीं है। अगर लोग धर्म ग्रन्थों का गलत अर्थ लगावें तो इसमें उन ग्रन्थों का क्या दोष? और अगर कोई व्यक्ति सत्य बात कहता है तो क्या वह इस बात पर दोष का भागी हो सकता है कि जो बात उसने कही है वह तो धर्म-ग्रन्थों में भी लिखी हुई है?

इसके अलावा एक बात और है, और उसको हमें कभी भूलना नहीं चाहिए। वह यह कि अगर थोड़ी देर के लिए हम मान लें कि जिन्हे लोग धर्म-ग्रन्थ कहते हैं वे मनुष्यों के बनाये हुए हैं, ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं हैं, तो भी हमको इस बात का स्पष्टीकरण तो करना ही पड़ेगा कि क्या वजह है कि दूसरे सब निबन्धों को छोड़ कर लोगों ने मनुष्यों द्वारा रचित इन्हीं निबन्धों को स्वयं ईश्वर के कहे हुए वाक्य मानना शुरू कर दिया? इसका कोई-न-कोई कारण जरूर होना चाहिए।

और इसका कारण बिल्कुल स्पष्ट है।

इन धर्म-ग्रन्थों को अन्ध-श्रद्धालु लोग ईश्वर द्वारा निर्मित इस-

लिए कहते रहे हैं कि वे उन सब से उत्तम और श्रेष्ठ हैं जिनका लोगों को ज्ञान है; और यही वजह है कि कुछ लोगों के द्वारा सर्वदा निन्दनीय ठहराये जाने पर भी ये धर्म-ग्रन्थ अब तक कायम रहे हैं और आज भी ईश्वरीय माने जाते हैं। इन धर्म-ग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान से युक्त माने जाने की वजह यह है कि इनके अन्दर मनुष्य-जाति का सर्वोच्च ज्ञान भरा पड़ा है। और बाइबिल के नाम से जो धर्म-ग्रन्थ विख्यात है, उसके अनेक भागों के संबंध में वस्तुतः यही बात कही जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक के आरम्भ में जो धर्म-वाक्य उद्धृत किया गया है और जिसको बोण्डारीफ़ ने अपनी पुस्तक में विस्तार के साथ समझाया है, वह भी इस प्रकार के धर्म-ग्रन्थों का एक विस्मृत, उपेक्षित और ग़लत तरीके से समझा हुआ कथन है। इस कथन और स्वर्ग की कहानी का आम-तौर पर शाब्दिक अर्थ समझ लिया जाता है, मानो इस कहानी में वर्णित सारी घटनाएं वास्तव में किसी अवसर विशेष पर घटित हुई हों। परन्तु इस सम्पूर्ण आख्यायिका का वास्तविक तात्पर्य केवल इतना ही है कि वह मानव स्वभाव की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को हमारे सामने आलंकारिक रूप में उपस्थित करती है।

मनुष्य मृत्यु से सदा भयभीत रहता है। लेकिन उसकी मृत्यु उतनी ही निश्चित है जितना प्रतिदिन सूर्य का उदय होना। अच्छाई और बुराई का ज्ञान न होने पर मनुष्य सुखी दिखलाई पड़ता है। लेकिन फिर भी उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए वह निरंतर प्रयत्न किया करता है। मनुष्य को आलस्य पसन्द है, और बिना किसी तरह का शारीरिक कष्ट उठाये वह अपनी अभिलाषाओं को पूरा करना चाहता है। लेकिन उसका अथवा उसकी सम्पूर्ण जाति का जीवन केवल परिश्रम और और कष्ट सहिष्णुता से ही कायम रह सकता है।

जिस वाक्य को बोण्डारीफ़ने उद्धृत किया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

इस वाक्य का महत्त्व इस बात में नहीं है कि उसके बारे में जन-श्रुति है कि ईश्वर ने यह वाक्य आदम को कहा था, बल्कि इसका महत्त्व इस बात में है कि यह वाक्य हमारे सामने एक सत्य को प्रकट करता है— मनुष्य जीवन के एक अटल नियम की घोषणा करता है। गुरुत्वाकर्षण का नियम इसलिए सच्चा नहीं है कि न्यूटन ने उसका प्रतिपादन किया था, बल्कि सचाई इस बात में है कि मैं न्यूटन को जानता हूं और उसकी इस बात के लिए मैं उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं कि उस ने मुझको एक ऐसे शाश्वत नियम का ज्ञान कराया जिसके सहारे से मैं एक विशेष प्रकार की सम्पूर्ण बातों के रहस्य को समझ सकता हूं।

यही बात इस नियम के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होती है कि "मनुष्य को चाहिए कि वह पसीना बहाकर अपना उदर पोषण करे।" यह एक ऐसा नियम है जो मेरे सामने एक विशेष प्रकार की सम्पूर्ण बातों को अपने असली रूप में रख देते हैं। और एक बार इसका परिचय पा लिया तो अब मैं इसको कभी भूल नहीं सकता और मैं उस व्यक्ति के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं जिसने मुझको ऐसा स्वर्ण नियम बताया।

सिर्फ ऊपर-ऊपर से देखने पर तो यह नियम अत्यन्त सरल और परिचित सा दिखाई पड़ता है और इसमें कहे गये सत्य का प्रमाण प्राप्त करने के लिए हमको केवल अपने चारों ओर एक नजर भर डालने की जरूरत रहती है। लेकिन सच बात तो यह है कि इस नियम को अंगीकार करना और इसका पालन करना तो दूर रहा, लोग तक इसके विपरीत नियम को मानते तथा उस पर आचरण करते हैं। लोगों का विश्वास कुछ ऐसा बन गया है कि राजा से लगाकर रंक तक सभी इस नियम का पालन करने के बजाय उससे बचने का प्रयत्न करते है बोण्डारीफ़ की सम्पूर्ण पुस्तक का उद्देश्य इस नियम के स्थायित्व और निर्विकल्पत्व को प्रमाणित करना तथा लोगों को यह बात बतलाना है

कि इस नियम की उपेक्षा करने से उन्हें किन-किन अनिवार्य आपदाओं का सामना करना पडता है।

बोंडारीफ़ ने इस नियम को दूसरे तमाम नियमों से श्रेष्ठ और सब से पहला नियम माना है।

बोण्डारीफ़ इस बात को बतलाता है कि हमारे सारे पापों अर्थात् हमारी भूलों और बुरे कामों—की जड़ यह है कि हम इस नियम की उपेक्षा करते हैं। मनुष्य के लिए जितने कर्तव्य निश्चित हैं उन सबमें बोण्डारीफ़ प्रत्येक मनुष्य के लिए इस कर्तव्य को सबसे प्रधान, सर्व-प्रथम और निर्विकल्प समझता है कि वह अपने हाथों से अपनी रोटी कमाए। यहां पर रोटी के लिए मजदूरी से उसका तात्पर्य उन तमाम भारी और कर्कश कामों से है जो भूख और प्यास जनित मृत्यु से बचने के लिए मनुष्य को करने पड़ते हैं, और रोटी शब्द से उसका तात्पर्य अनाज, पानी, पेय पदार्थों, कपड़ों, मकानों और इंधन से है।

इस सम्बन्ध में बोण्डारीफ़ का मौलिक विचार यह है कि—'जीवित रहने के लिए मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए। इस नियम को हम लोग अबतक जीवन का सिर्फ एक अवश्यम्भावी नियम मानते रहे हैं, लेकिन भविष्य में हमको उसे मनुष्य जीवन का एक लाभदायक नियम मानने लगना चाहिए और इसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य बना देना चाहिए।

यह नियम समाज का एक धार्मिक नियम बन जाना चाहिए। जिस प्रकार इतवार को छुट्टी रखी जाती है, जिस प्रकार गिर्जा के ईसाई देव-प्रसाद ग्रहण किया करते हैं, जिस प्रकार मुसलमान दिन में पांचबार नमाज पढ़ा करते हैं और जिस प्रकार हिन्दू सायं-प्रातः सन्ध्या करते हैं तथा एकादशी और अमावस्या को उपवास किया करते हैं उसी प्रकार यह नियम भी मनुष्यों का एक दैनिक धार्मिक कृत्य बना दिया जाना चाहिये। बोण्डारीफ़ एक स्थान पर कहता है कि यदि लोग रोटी के

लिए मजदूरी के सिद्धान्त को अपना धार्मिक कर्तव्य मानने लगें तो अपने व्यक्तिगत अथवा विशेष धन्धों में बिना किसी प्रकार की बाधा पहुंचाये वह इस नियम का भली भांति पालन कर सकते हैं। जिस प्रकार गिर्जा-मतावलम्बी लोगों को उनके विशेष रोजगार निर्धारित दिनों पर छुट्टियां मनाने से नहीं रोकते उसी प्रकार यह नियम भी उनके इन रोजगारों में बाधा नहीं पहुंचा सकता। प्रतिवर्ष लोग लगभग ८० दिनों की + छुट्टी मनाते रहते हैं, लेकिन बोण्डोरीफ़ के लगाये हुए हिसाब के अनुसार रोटी के लिए मजदूरी करने के नियम का पालन करने के लिए चालीस दिन ही पर्याप्त होंगे।

आरम्भ में यह बात हमको विचित्र अवश्य मालूम होगी कि सबकी समझ में आने लायक और इतने सरल साधन के द्वारा, जिसमें किसी प्रकार के कौशल एवम् पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं, हम किस प्रकार मनुष्य-जाति को उसकी असंख्य बुराइयों से बचा सकते हैं। लेकिन इससे भी अधिक विचित्र बात तो यह है कि हम लोग कितने अनाड़ी हैं कि अपने पास इतने स्पष्ट, सरल और दीर्घ काल से परिचित साधन के होते हुए भी हम उसकी उपेक्षा कर रहे हैं और हमारी बुराइयों की दवा नाना प्रकार की जटिलताओं, पाण्डित्य और कौशलपूर्ण बातों में खोजते हैं। यदि पाठक इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे तो हमारे कथन की सत्यता उनपर भली भांति प्रकट हो जावेगी।

पानी के हौज के पेन्दे में सूराख होजाने पर अगर कोई आदमी सूराख को बन्द किये बिना ही हौज में से पानी को निकलने न देने

+रूस में सन्तों के दिन बहुत अधिक संख्या में हैं। इन दिनों में वहां पर काम की छुट्टी रहती है। लेकिन वहां सप्ताह में शनिवार को अन्य दिन से आधे या पूरे दिन की छुट्टियां नहीं रहतीं। इसलिए जोड़ लगने पर वहां के और इंग्लैण्ड के छुट्टी के दिनों का समय करीब-करीब बराबर पड़ जाता है।

के भांति-भांति के चतुरता-पूर्ण उपाय करने लगे तो क्या उससे पानी का निकलना बन्द होजायेगा ? समाज में प्रचलित बुराइयों को दूर करने के लिए हम आज-कल जिन असंख्य उपायों को काम में ला रहे हैं वे सब इसी प्रकार के उपाय हैं। हम रोग की जड़ को तो छूते तक नहीं और उसके पत्तों और डालियों को काटने में हमने अपनी सारी शक्ति लगादी है। क्या इससे रोग का नाश हो सकता है ?

समाज के अन्दर कुछ बुराइयां तो इस प्रकार की हैं जिन्हें लोग प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे के साथ करते हैं। उदाहरणार्थ किसी की हत्या कर डालना, किसी को फांसी पर लटका देना, कैद में डाल देना, लड़ाई में मार डालना इत्यादि ऐसे कार्य हैं जिनमें "मनुष्य हिंसा का प्रयोग करके पाप का भागी बनता है। किन्तु अगर इन कार्यों को हम एक ओर रखदें तो यह सवाल पैदा होता है कि मनुष्य जीवन की दूसरी बुराइयों का वास्तविक कारण क्या है ?" सिवाय उन बुराइयो के जो प्रत्यक्ष हिंसा के द्वारा पैदा होती हैं, मनुष्य जाति की तमाम बुराइयों की जड़ है, लोगों की भुखमरी, मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक सब प्रकार के पदार्थों का अभाव, अपने सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करना, अथवा इसके विपरीत असंयमित और आलसी जीवन बिताना और इस प्रकार के जीवन के फलस्वरूप पैदा हुई अनैतिकता और चरित्र-हीनता। ऐसी अवस्था में किसी मनुष्य के लिए इससे अधिक पवित्र दूसरा कौन-सा कर्तव्य हो सकता है कि वह इस असमानता का विनाश करने में मददगार बने ? वह एक ओर तो जन-साधारण की गरीबी को मिटाने और दूसरी ओर सम्पत्ति के प्रलोभनों का नाश करने में सहायक बने। और वह कौनसा तरीका है जिससे मनुष्य इन बुराइयों का नाश करने में मददगार बन सकता है ? वह तरीका इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि एक ओर मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले कार्यों में हिस्सा ले और दूसरी ओर प्रलोभनों और चरित्र-हीनता को उत्पन्न करने वाले भोगविलास-

मय, प्रमाद-पूर्ण और असंयमित जीवन से अपने आपको मुक्त करले—अर्थात् जैसा कि बोण्डारीफ का कथन है, प्रत्येक व्यक्ति अपने उदर-पोषण के लिए स्वयं अपने हाथों से परिश्रम करे।

मनुष्य जाति में प्रचलित बुराइयों का दुखड़ा कहां तक रोया जाय ! हम लोग बहुत गहराई तक दल-दल में फंस चुके हैं और भांति-भांति के धार्मिक, सामाजिक और कौटुम्बिक कानूनों और नियमों के जाल में हमने अपने-आपको बहुत बुरी तरह जकड़ लिया है। साथही हमने विविध प्रकार की इतनी धर्माज्ञाओं और उपदेशों का स्वीकार कर रक्खा है कि हमारे अन्दर से सद्-असद् विवेक-बुद्धि का सर्वथा लोप होगया है।

हमारी प्रचलित समाज व्यवस्था वस्तुतः अत्यन्त विचित्र है ! हम में से एक आदमी मन्दिर में पूजा करता है, दूसरा आदमी सैन्य-संग्रह करता है, अथवा सेना के लिए जनता से कर वसूल करता है, तीसरा आदमी न्यायधीष का काम करता है, चौथा आदमी पुस्तकों का अध्ययन करता है, पांचवां आदमी लोगों की चिकित्सा करता है और छठा आदमी बालकों को शिक्षा देने का कार्य करता है। इन सब लोगों ने उपरोक्त कार्यों के करने का बहाना बनाकर रोटी के लिए मजदूरी करने के कर्त्तव्य से अपने आपको स्वतंत्र कर लिया है और उस कर्त्तव्य को दूसरे लोगों पर लाद दिया है और इस बात को बिल्कुल भूल गये हैं। असंख्य मनुष्य शक्ति-क्षीणता, अति-परिश्रम एवम् भूख के मारे आये दिन मौत के शिकार बनते जा रहे हैं। साथ ही वे इस बात को भी भूल जाते हैं कि मन्दिरों की पूजा करने वाले, सेना-द्वारा देश की रक्षा करने वाले, अपराधों का निर्णय करने वाले, रोगियों की चिकित्सा करने वाले और बालकों को शिक्षा देने वाले—इन सब प्रकार के लोगों का समाज में अस्तित्व बनाये रखने के लिये सबसे पहले इस बात की आवश्यकता है कि उपरोक्त असंख्य मनुष्यों को भूखों मरने से बचाया जाय। हम इस बात का जरा भी खयाल नहीं

करते कि मनुष्यों के असंख्य प्रकार के कर्त्तव्यों में से कुछ का नम्बर उनके महत्त्व और उपयोगिता की दृष्टि से सबसे पहले आता है, कुछ का सबसे बाद में ; और यह कि जिस प्रकार मनुष्य को खेत जोतने से पहले खेत को नींदने का कार्य नहीं करना चाहिए, उसी प्रकार उसको चाहिए कि वह अपने प्रारम्भिक कर्तव्य को पूरा किये बगैर अन्तिम कर्त्तव्य को पूरा करने का प्रयत्न कदापि न करे।

बोण्डारीफ़ की सम्पूर्ण शिक्षा का सार केवल यही है। बोण्डारीफ प्रति-दिन के हमारे व्यवहारिक जीवन के उस असन्दिग्ध और प्रारम्भिक कर्त्तव्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहता है। बोण्डारीफ़ का कथन है कि इस कर्त्तव्य की पूर्ति करने से न तो दूसरे किसी कार्य को हानि पहुंच सकती है और न इससे किसी व्यक्ति के मार्ग में कठिनाइयां ही पैदा हो सकती हैं। बल्कि यह लोगों को दरिद्र और दुःखी होने से बचाती है और उनको सम्पत्ति के प्रलोभनों में फंसने नहीं देती। इस कर्त्तव्य की पूर्ति का सब-से बड़ा, सब-से महत्त्वपूर्ण और सब-से अधिक कल्याणप्रद-परिणाम यह होगा कि वह भयंकर विषमता नष्ट हो जायगी, जिस के अनुसार सम्पूर्ण मनुष्य जाति आज धनवान और ग़रीब, किसान और जमींदार, शासक और जनता ऐसे दो भागों में बंटी हुई है, जो एक दूसरे, से घृणा करते हैं और अपनी इस घृणा को एक-दूसरे की चाटुका-रितामें छिपा रहे हैं। बोण्डारीफ़ कहता है कि रोटी के लिए मज़दूरी करने का सिद्धान्त सब लोगों को समान श्रेणी में पहुंचा देता है और भोग-विलास के पर काट डालता है।

कोई भी मनुष्य उत्तमोत्तम वस्त्र पहने हुए, अपने हाथों को स्वच्छ रखते हुए और प्रति-दिन बढ़िया भोजन करते हुए न तो खेतों में हल चलाने का कार्य कर सकता है और न कुंआ ही खोद सकता है। ऐसे-ऐसे कार्य करने के लिए तो नजाकत की इन चीजों का सर्वथा त्याग करना पड़ेगा। कोई भी पवित्र धंधा, जो सब लोगों के लिए सामान्य

हो, मनुष्यों को एक सूत्र में बांध देगा। बोण्डारीफ का कथन है कि रोटी के लिए मजदूरी करने का सिद्धांत एक ओर तो उन लोगों को विवेक-शक्ति प्रदान करेगा, जो मनुष्य के लिए अत्यन्त स्वाभाविक जीवन-चर्या का परित्याग करके अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे हैं और दूसरी ओर यह उन लोगों का सुख और सन्तोष प्रदान करेगा, जो अन्दिग्ध रूप से उपयोगी, स्वयं ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट और प्रकृति के नियमों के अनुरूप कार्य को करने में संलग्न हैं।

बोण्डारीफ़ कहता है कि रोटी के लिये मजदूरी करने का सिद्धांत मनुष्य जाति में प्रचलित बुराइयों की एक-मात्र दवा है। अगर मनुष्य इस प्रारम्भिक नियम को ईश्वर के एक अपरिवर्तनीय नियम के रूप में स्वीकार कर लें—अगर प्रत्येक मनुष्य इस बात को मान ले कि अपने हाथ से मजदूरी करके अपना पेट भरना उसका एक अनिवार्य कर्त्तव्य है—तो दुनिया के तमाम आदमी एक हा परमात्मा में विश्वास करने लग जांय और एक दूसरे के साथ प्रेम-सूत्र में बंध जांय, तथा जिन कष्टों के भार के नीचे आज हम दबे हुए हैं, वे सब के सब समाप्त हो जायं।

लेकिन हम ऐसा करते कहां हैं? हम तो आज-कल ऐसी जिन्दगी बिताने के आदी हो गय हैं, जो उपरोक्त विचार के सर्वथा विपरीत है। हमने इस बात को स्वयं-सिद्ध सत्य मान रक्खा है कि सम्पत्ति अथवा धन-दौलत ईश्वर का एक आशीर्वाद और ऊँची सामाजिक स्थिति अथवा पद-प्रतिष्ठा का द्योतक है, जिसके द्वारा हम रोटी के श्रम करने से बच सकते हैं। हम बोण्डारीफ के मन्तव्य का विश्लेषण किये बिना ही यह मान लेना चाहते है कि उसकी योजना संकीर्ण, इकतर्फा, सारहीन और मूर्खता-पूर्ण है। लेकिन हमको चाहिए कि हम उस मन्तव्य का सावधानी के साथ विश्लेषण करें, और फ़िर इस बात का निर्णय करें कि वह सही है अथवा ग़लत।

हम लोग सब प्रकार के धार्मिक और राजनैतिक सिद्धान्तों की आलोचना एवम् जांच-पड़ताल किया करते हैं। आज हम बोण्डारीफ़ के सिद्धांत की भी जांच पड़ताल कर डालें। सबसे पहले हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि अगर बोण्डारीफ़ के मन्तव्य के अनुसार धार्मिक शिक्षा द्वारा रोटी के लिये श्रम करने के सिद्धांत पर प्रकाश डाला जाय और सब लोग परिश्रम के इस पवित्र और प्राथमिक नियम को मानने लगें, तो इसका परिणाम क्या होगा ?

उस अवस्था में सब-के-सब मनुष्य हाथ से काम करने लग जावेंगे और अपनी-अपनी मेहनत से कमाई हुई चीजों का उपयोग करने लगेंगे। तब अनाज और मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताओं की दूसरी चीजें खरीदने और बेचने के पदार्थ नहीं रह जायंगे।

इसका क्या परिणाम होगा ?

परिणाम यह होगा कि भविष्य में लोग भूखे, प्यासे, नंगे और दरिद्र नहीं रहने पावेंगे। अर्थात् अभाव के कारण मृत्यु के ग्रास न बनेंगे। अगर किसी दैवी प्रकोप अथवा अन्य दुर्भाग्य-पूर्ण परिस्थितियों के कारण उस समय कोई आदमी अपने और अपने परिवार के लिये पर्याप्त अन्न उत्पन्न नहीं कर सकेगा, तो उसका कोई पड़ौसी जिसने अच्छी परिस्थितियों के कारण विपुल मात्रा में अन्न पैदा कर लिया होगा, उस आदमी के लिये आवश्यक अन्न की पूर्ति कर देगा। वह खुशी से ऐसा करेगा, कारण जब अन्न बिकेगा नहीं, तो फिर उसका दूसरा उपयोग भी क्या होगा ? उस समय मनुष्यों को इस बात का प्रलोभन भी नहीं होगा कि वे अभाव के मारे चालाकी अथवा जोर-जबर्दस्ती से अपने लिये रोटी प्राप्त करें। और जब उनके आगे ऐसा प्रलोभन न होगा, तो वे चालाकी और हिंसा का आश्रय भी न लेंगे। जो अभाव आज उन्हें अनैतिक उपायों का आश्रय लेने को विवश करता है उस समय वह दूर हो चुकेगा।

उस अवस्था में भी अगर कोई आदमी चालाकी अथवा हिंसा का आश्रय लेगा, तो आजकल की भांति उसकी वजह यह हर्गिज नहीं होगी कि उसको इस प्रकार के दुष्कर्म करने की आवश्यकता है; बल्कि उसकी वजह सिर्फ़ यह होगी कि वह ऐसे काम करना पसन्द करता है।

न ही उस समय दुर्बल मनुष्यों को—उन मनुष्यों को जो किसी कारणवश अपनी रोटी खुद कमाने में असमर्थ होंगे, अथवा जिन्होंने अपनी कमाई के साधन को किसी प्रकार खो दिया होगा—रोटी के लिए अपने शरीरों अथवा कभी-कभी आत्माओं को बेच देने की आवश्यकता होगी।

उस समय आजकल की तरह यह आम कोशिश भी न होगी कि खुद तो अपनी रोटी के लिए परिश्रम न किया जाय और दूसरों से परिश्रम करवाया जाय, अर्थात् कमजोरों को उनकी शक्ति से अधिक काम लेकर कुचलने की कोशिश की जाय और बलवानों को परिश्रम से बिल्कुल ही मुक्त कर दिया जाय।

आजकल मनुष्यों का दिमाग इस बात में खर्च नहीं होता कि श्रम-जीवियों के बोझ को हल्का किया जाय, वह तो इस बात में खर्च हो रहा है कि किस प्रकार आलसियों के आलस्य को हल्का और आकर्षक बनाया जाय। उस समय मनुष्यों की यह वृत्ति न होगी। जब सब लोग रोटी के लिए श्रम करेंगे और इसको प्रथम मानव-नियम समझेंगे, तो हमारी गाड़ी आसानी से चल निकलेगी। मूर्खों ने गाड़ी को उलट दिया है और उधर से इधर खींच रहे हैं। इस गाड़ी को हम पुनः पहियों पर खड़ी कर देंगे। परिणाम यह होगा कि गाड़ी टूटने से बच जायगी और आसानी से चलने लगेगी।

हम रोटी के लिए मजदूरी करने के सिद्धान्त को नहीं मानते और उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह है हमारे आजकल के जीवन की विशेषता। इस गलत जीवन को सुधारने की कोशिशें ठीक वैसी ही हैं

जैसी कि पहियों को आकाश की ओर करके गाड़ी को खींचने की कोशिश हो सकती है। जबतक हम गाड़ी को उलट कर रास्ते पर खड़ी नहीं कर देते, तबतक हमारे सारे सुधार निष्फल सिद्ध होंगे।

संक्षेप में बोण्डारीफ़ का यही विचार है और मैं इससे पूरे तौर पर सहमत हूं। यह सारा मामला मेरे सामने पुनः इस रूपमें उपस्थित होता है:—किसी जमाने में लोग एक दूसरे को खाजाते थे। जब मनुष्यों के अन्दर पारस्परिक एकता की भावना का उदय और विकास हुआ तो इस प्रकार का पैशाचिक कार्य असंभव हो गया और लोगों ने एक दूसरे को खाना छोड़ दिया। इसके बाद ऐसा ज़माना आया, जब लोगों ने हिंसा और जोर-जबर्दस्ती के द्वारा अपने साथी मनुष्यों के पसीने की कमाई पर नाजायज़ क़ब्जा करके उन्हें अपना गुलाम बना डाला। लेकिन मनुष्यों की चेतना-शक्ति का और अधिक विकास हुआ और यह कार्य भी अबअसम्भव हो गया। यद्यपि अब भी छुपे-हुए तरीकों से बल प्रयोग होता है, तथापि उसका वह स्थूल रूप नष्ट हो चुका है—अर्थात् अब लोग दिन-दहाड़े एक दूसरे की कमाई नहीं हड़पते। आजकल इस हिंसा और बल-प्रयोग ने जो स्वरूप धारण कर रक्खा है, वह यह है कि कुछ लोग दूसरे लोगों की आवश्यकताओं और अभावों का लाभ उठाकर उनका शोषण करते हैं। बोण्डारीफ़ की सम्मति में वह ज़माना भी बहुत जल्द आनेवाला है, जब लोगों के अन्दर मनुष्य-जाति की एकता की भावना इतनी अधिक विकसित हो जावेगी कि मनुष्यों के लिये दूसरे लोगों की आवश्यकताओं भूख, प्यास, और सर्दी-गर्मी—का लाभ उठाकर उनका शोषण करना असम्भव हो जावेगा। और जब रोटी के लिये मजदूरी करना लोग अपना एक अनिवार्य कर्तव्य मानने लगेंगे और जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के पदार्थों का खरीदना-बेचना बन्द कर देंगे, तो वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे के लिए भोजन-वस्त्र सुलभ करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझेंगे।

इस मामले पर दूसरे दृष्टि-कोण से विचार करते हुए मैं बोण्डारीफ़ द्वारा प्रस्तुत समस्या को निम्नलिखित रूप में समझता हूं:—हमने बहुधा लोगों को यह कहते हुए सुना ह कि केवल नकारात्मक नियम और धार्मिक आदेश सामाजिक सुधार के लिए काफ़ी नहीं हैं" हमको तो स्वीकारात्मक नियमों की—ऐसे नियमों की जो हमें बतलावें कि अमुक-अमुक कार्य हमको करने चाहिए— ज़रूरत है।" ईसा मसीह के निम्न-लिखित पांच आदेश हैं--१. किसी को तुच्छ अथवा भ्रान्त-चित्त मत समझो और न किसी के प्रति क्रोध करो; २. स्त्री-सम्भोग को आनन्द का विषय मत समझो; और चाहे तुम स्त्री हो या पुरुष, जिस-किसी के भा साथ तुम्हारा एक बार वैवाहिक सम्बन्ध बंध चुका है, उसका साथ मृत्यु पर्यंत मत छोड़ो; ३. किसी के आगे सौगन्ध न खाओ, न अपनी स्वतंत्रता ही किसी को बेचो; ४. दूसरों के आक्रमणों और ज़ोर-ज़बर्दस्ती को सहन करो, हिंसा के द्वारा उनका कभी प्रतिकार मत करो; और ५. किसी भी मनुष्य को अपना शत्रु मत समझो; बल्कि अपने शत्रुओं से भी अपने मित्रों की भांति ही प्रेम करो। लोग अक्सर इस बात की शिकायत किया करते हैं कि ईसामसीह के ये पांचों आदेश हमको केवल यह बतलाते हैं कि मनुष्य को अमुक-अमुक काम नहीं करने चाहिए। लेकिन ऐसा कोई भी आदेश अथवा धार्मिक नियम नहीं है जो हमको यह बतलावे कि मनुष्य को अमुक-अमुक कार्य करने चाहिए।

और यह बात सचमुच बड़ी विचित्र मालूम होती है कि ईसा मसीह के उपदेशों में इसी प्रकार के निश्चित आदेश नहीं हैं कि मनुष्य को अमुक-अमुक कार्य करने चाहिए। लेकिन यह बात सिर्फ उन्हीं लोगों को विचित्र मालूम हो सकती है, जिनकी ईसा के उपदेशों में श्रद्धा नहीं है। अन्यथा उन लोगों को मालूम हो जाता कि ईसा की शिक्षा इन्हीं पांच आदेशों तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी सारी शिक्षा स्वयं सत्य की शिक्षा है।

ईसा सत्य का पुजारी था। उसने सत्य की जो शिक्षा दी, उसको हम आदेशों और धार्मिक नियमों में नहीं ढूंढ सकते, बल्कि उसको हम सिर्फ एक ही चीज में पा सकते हैं। वह चीज है उसके द्वारा हमारे सामने रक्खा गया मनुष्य जीवन का नया आदर्श। मनुष्य जीवन के इस नवीन आदर्श का सार यह है कि व्यक्तिगत सुख के द्वारा जीवन और उसके शुभ फलों को प्राप्त नहीं किया जा सकता, जैसा कि साधारणतः लोगों की धारणा है; उन्हें तो परमात्मा और मनुष्यों की सेवा करने से ही प्राप्त किया जा सकता है। यह ऐसा आदेश नहीं है, जिसका किसी प्रतिफल की आशा से पालन किया जाय और न यह किसी रहस्यपूर्ण और अबोधनीय पदार्थ की रहस्यपूर्ण अभिव्यक्ति ही है। बल्कि यह मनुष्य-जीवन के पहले से छिपे हुए एक नियम का केवल उद्घाटन मात्र है। इसके द्वारा हमको यह लाभ होता है कि जब हम इस सत्य को समझ लेंगे, तभी जीवन हमारे लिए वरदान सिद्ध हो सकेगा। इसलिए ईसा की सम्पूर्ण स्वीकारात्मक शिक्षा इस एक बात में व्यक्त कर दी गई है– ईश्वर से प्रेम करो और अपने पड़ोसी से भी उसी तरह प्रेम करो जिस तरह तुम अपने-आप से एवम् अपने कुटुम्बियों से प्रेम करते हो। इस उपदेश पर कुछ लिखना तथा इसका विस्तार करना असम्भव है। यह उपदेश सम्पूर्ण है, क्योंकि इसके अन्दर सब कुछ समाया हुआ है। यहूदी-धर्म और बौद्ध-धर्म के आदेशों या धार्मिक नियमों की भांति ईसामसीह के आदेश और धार्मिक नियम भी मनुष्यों को सिर्फ उन परिस्थितियों का संकेत मात्र करते हैं, जिन में दुनिया के मायाजाल मनुष्यों को जीवन के सच्चे प्रयोजन से भटका देते हैं। और यही वजह है कि धार्मिक आदेश और धार्मिक नियम संसार में अनेक हो सकते हैं, लेकिन मनुष्य-जीवन सम्बन्धी स्वीकारात्मक शिक्षा—इस बात की शिक्षा कि मनुष्य को क्या करना चाहिए–सिर्फ एक ही हो सकती है।

प्रत्येक मनुष्य का जीवन कहीं-न-कहीं जा रहा है। चाहे उसकी इच्छा हो या न हो, वह हिलता-डुलता है, कर्म करता है–जीवित

रहता है। ईसा ने मनुष्यों को जीवन का राजमार्ग बतला दिया और साथ ही उस सच्चे मार्ग से भटकाने वाले रास्तों की ओर भी संकेत कर दिया। इस प्रकार के संकेत अनेक हो सकते हैं। यही धार्मिक आदेश कहलाते हैं।

ईसा ने इस प्रकार के पांच धार्मिक आदेश दिये हैं, और सब आदेश ऐसे हैं कि आज भी इनमें से एक में भी कोई कमीबेशी नहीं की जा सकती। लेकिन जीवन के राजमार्ग की दिशा सिर्फ एक ही बतलाई गई है, क्योंकि एक निश्चित दिशा को बतलाने वाली सीधी लाइन एक ही हो सकती है।

इसलिए यह विचार, कि ईसा की शिक्षा में केवल नकारात्मक आदेश ही हैं और स्वीकारात्मक एक भी नहीं है, सिर्फ उन्हीं लोगों को सच्चा प्रतीत होता है, जो या तो सत्य की शिक्षा अर्थात ईसामसीह द्वारा इङ्गित जीवन के सच्चे मार्ग की दिशा नहीं जानते, या उस शिक्षा में विश्वास नहीं रखते। लेकिन जो लोग ईसा द्वारा बतलाये गये जीवन-मार्ग की सत्यता में विश्वास रखते हैं, वे उसके उपदेशों में स्वीकारात्मक आदेशों को ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न नहीं करेंगे। इन लोगों को तो जीवन के सच्चे मार्ग की शिक्षा से उद्‌भव होने वाले समस्त स्वीकारात्मक कार्यों का चाहे वे कार्य कितने ही भिन्न-भिन्न प्रकार के क्यों न हों हमेशा स्पष्ट और निस्संशयास्पद रूप से पता होता है।

इस जीवन-मार्ग में श्रद्धा रखने वाले लोग, स्वयं ईसामसीह की उपमा के अनुसार, निर्मल जल के महान स्रोत की भांति होते हैं। उनके सारे कार्य इस जल के प्रवाह के समान होते हैं। यह जल बाधाओं और आपत्तियों की पर्वाह किये बिना सब तरफ बहा करता है। ईसा की शिक्षा में श्रद्धा रखने वाले आदमी के सामने यह सवाल कभी पैदा ही नहीं होता कि उसको किन-किन स्वीकारात्मक आदेशों का पालन करना चाहिए; ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि भूमि में से फूट कर

बाहर निकलने वाले जल-स्रोत के सामने यह सवाल पैदा नहीं होता कि वह किधर बहे और किधर न बहे। वह तो बह निकलता है और भूमि, घास, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं और मनुष्यों की प्यास बुझाता जाता है।

और जो आदमी ईसामसीह की शिक्षा में श्रद्धा रखता है वह भी ठीक ऐसा ही करता है।

ईसामसीह की शिक्षा को मानने वाला आदमी यह कभी नहीं पूछेगा कि वह क्या करे। जो प्रेम उसके जीवन की प्रेरक-शक्ति बना हुआ है, वह उसको निश्चित और अनिवार्य रूपसे बतलादेगा कि वह कहाँ काम करे, कौनसा काम पहले करे और कौनसा बाद में।

थोड़ी देर के लिये हम यहां पर ईसामसीह की शिक्षा के आदेशों को एक ओर रख देते हैं, जो इन बातों से पूर्ण रूप से भरे हुए हैं कि प्रेम का सर्वप्रथम और अत्यन्त आवश्यक कार्य यह है कि हम भूखों को भोजन दें; प्यासों को जल पिलावें; वस्त्रहीन लोगों के शरीरों को कपड़े से ढकें; और दीन-हीन, असहाय, अनाथ व्यक्तियों तथा क़ैदियों की सहायता करें। हम यहां पर केवल अपनी विवेक-शक्ति से काम लेना चाहते हैं। हमारी बुद्धि, हमारी आत्मा और हमारी अन्तःस्फूर्ति सब के सब हमको इस बात के लिए बाध्य करते हैं कि जीवित मनुष्यों के प्रति प्रेमपूर्ण सेवा का कोई दूसरा कार्य हाथ में लेने से पूर्व सबसे पहले हम अपने मानव बन्धुओं की कष्टों और मृत्यु से रक्षा करके उनकी जिन्दगी को कायम रक्खें और उन्हें उस मृत्यु से बचावें, जो प्रकृति के साथ उनके दुस्साध्य संघर्ष में पग-पग पर उनके सामने आ खड़ी होती है। दूसरे शब्दों में हम लोगों को मनुष्य-जीवन के लिये परमावश्यक परिश्रम के कामों में—ज़मीन में किये जाने वाले प्राथमिक, कठोर और भारी श्रम के कार्यों में—हिस्सा बंटाने के लिए आदेश दिया गया है।

जिस प्रकार कोई जल-स्रोत यह प्रश्न नहीं पूछ सकता कि मैं

अपना पानी किस तरफ़ बहाऊं ?—आया घासों और वृक्षों के पत्तों पर छींटें डालते हुए ऊपरकी तरफ़ पानी बहाऊं या घास और वृक्षों की जड़ों में पानी पहुंचाते हुए नीचे की तरफ़ अपने पानी को बहाऊं ? उसी तरह से सत्य की शिक्षा में श्रद्धा रखने वाला आदमी भी यह प्रश्न नहीं पूछ सकता कि मुझको सबसे पहले कौन सा कार्य करना चाहिए ?—आया मैं लोगों को विद्या पढ़ाऊं, उनकी रक्षा करूं, उनका मन बहलाऊं और उनके सामने जीवन के सुख-साधनों को प्रस्तुत करूं; या जीवन-धारण करनेके लिए आवश्यक सामग्री के अभाव में उन्हें नष्ट होने से बचाऊं ? और जिस प्रकार किसी-किसी स्रोत का जल भूमि को तृप्त करने के बाद ही ज़मीन की सतह पर बहने लगता है और तालाबों को भरता एवम् मनुष्यों और पशुओं की प्यास बुझाता है; ठीक उसी प्रकार सत्य की शिक्षा में श्रद्धा रखने वाला पुरुष मनुष्य-जाति की प्राथमिक और परमावश्यक आवश्यकताओं (मांगों) की पूर्ति करने के बाद उनसे कम आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के कार्य में हाथ लगा सकता है। जब तक वह भूखे लोगों की भूख नहीं बुझा लेता और जीवन-सामग्री की पूर्ति के संघर्ष में उनको नष्ट होने से नहीं बचाता, तबतक वह दूसरा कोई कार्य अपने हाथ में नहीं ले सकता। जो मनुष्य सत्य और प्रेम की शिक्षा का अनुकरण वचन से नहीं; प्रत्युत मन, वचन, कर्म सभी से कर रहा है, वह इस बारे में कभी गलती नहीं कर सकता कि उसको सब से पहले कौन सा कार्य करना चाहिए। जिस मनुष्य ने दूसरे लोगों की सेवा को ही अपने जीवन का प्रयोजन समझ रक्खा है, क्या वह कभी ऐसी भयंकर भूल करेगा कि बेला, सारंगी और हारमोनियम बजाकर बढ़िया बढ़िया आभूषण तय्यार करके, अथवा गोला, बारूद तथा तोपें बनाकर भूखे और नंगे लोगों की सेवा करना प्रारम्भ करे।

प्रेम इतना मूर्ख नहीं हो सकता।

जिस प्रकार किसी आदमी के प्रति हमारे मन में प्रेम हो और यदि हम उसको भूखा मरता हुआ देखें तो हमें हमारा प्रेम उसको उपन्यास

सुनाने का आदेश नहीं देगा और यदि वह आदमी नंगा है, तो हमारा प्रेम इस बात को भी बर्दाश्त न करेगा कि हम उसको कपड़े पहनाने के बजाय उसके कानों में बहुमूल्य बालियां पहना दें; ठीक इसी प्रकार मनुष्य-जाति के प्रति हमारा प्रेम हमको इस बात की इजाजत नहीं देता कि हम उसके सुख से रहने वाले अंग का मनोरंजन करते रहें और उसके भूखे और नंगे अंग को जीवन-सामग्री के अभाव में मर जाने दें।

सच्चा प्रेम,—वह प्रेम जो केवल शाब्दिक ही न हो, बल्कि कार्य में भी परिणत किया जाय—कभी अविवेकपूर्ण नहीं हो सकता। वह तो हमको सच्ची अनुभूति और सच्ची विवेक-शक्ति प्रदान करता है।

और, इसलिए, जो मनुष्य इस प्रकार के विशुद्ध प्रेम से ओत-प्रोत होता है, वह अपने कर्त्तव्य के बारे में कभी ग़लती नहीं करता। वह तो सबसे पहले उसी कार्य को करता है, जिसको मनुष्यों के प्रति उसका प्रेम सबसे आवश्यक बतलाता है। इस प्रकार वह उसी कार्य को करता है, जिससे भूखे, नंगे, ठंड से ठिठुरते हुए और परिश्रम के भार से दबे हुए मनुष्यों के प्राणों की रक्षा होती है। लेकिन यह कार्य प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष करके ही किया जा सकता है।

जब मनुष्यों का अधिकांश समुदाय ख़तरे में हो, भूखा और नंगा हो और जीवन-सामग्री के अभाव की पूर्ति के लिए घोर संघर्ष कर रहा हो; तब वे ही लोग इस दुखी समुदाय को मदद न पहुंचाते हुए दूर खड़े तमाशा देख सकते हैं, जो अपने आपको तथा दूसरों को धोखा देना चाहते हैं। ऐसे ही लोग दूसरे लोगों का बोझ बढ़ाते हुए भी अपने आपको और अपनी आंखों के सामने नष्ट होने वाले सदूरे मनुष्यों को यह विश्वास दिला सकते हैं कि वे उनकी रक्षा करने के साधन ढूंढ रहे हैं, अथवा ढूंढने में तल्लीन हैं।

कोई भी शुद्ध हृदय व्यक्ति, जिसने दूसरों की सेवा करना ही अपने जीवन का उद्देश्य समझ रखा है, अपने मुंह से ऐसी बात नहीं

कहेगा। अथवा यदि वह इस बात को कहता है, तो उसकी आत्मा उसके इस भ्रम का कभी समर्थन नहीं करेगी, बल्कि उसको अपने कथन का प्रतिपादन श्रम-विभाजन के कुटिल सिद्धान्त में से ढूंढ़ना होगा। कनफ्यूशियस से लगाकर मुहम्मद साहब तक सच्ची मानवीय बुद्धिमत्ता के जितने भी अवतार हुए हैं, उन सब के अन्दर उसको यही एक सत्य बराबर दृष्टिगोचर होगा (और ईसाई धर्म-ग्रन्थों में यह सत्य और भी अधिक स्पष्टतापूर्वक दिखलाई पड़ेगा) कि मनुष्य दूसरों की सेवा श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार नहीं; बल्कि सबसे सरल स्वाभाविक और एक मात्र आवश्यक तरीक़े से करे, अर्थात् वह बीमारों, ग़रीबों, भूखों, नंगों और क़ैदियों की सेवा करे। और बीमारों, ग़रीबों, भूखों, नंगों एवम् क़ैदियों को अपने खुद के तात्कालित प्रत्यक्ष परिश्रम द्वारा ही सहायता पहुंचाई जा सकती है—क्योंकि बीमार, भूखे और नंगे लोगों के लिए अधिक समय तक प्रतीक्षा करना कठिन होता है, वे तो भूख और ठंड के मारे मर जाते हैं।

जिस आदमी ने सत्य की शिक्षा को अंगीकार कर लिया है और जिसने अपने जीवन का लक्ष्य दूसरों की सेवा करना निश्चित किया है; उस आदमी का जीवन उसको बाइबिल के आरम्भ में व्यक्त किये गये इस प्राथमिक नियम की ओर ले जायगा कि, "मनुष्य को चाहिए कि वह अपने पसीने की कमाई से अपना उदर पोषण करे।" बोण्डारीफ इस नियम को 'सबसे पहला' नियम कहता है, और इसको सर्वसाधारण के सामने स्वीकारात्मक आदेश के रूप में रखता है।

और जो लोग ईसामसीह द्वारा व्यक्त किये गये मनुष्य-जीवन के तात्पर्य को स्वीकार नहीं करते हैं, उनके लिए तो यह सचमुच स्वीकारात्मक नियम है। ईसा के पहले के लोगों के लिये यह ऐसा ही नियम था, और जो ईसा की शिक्षा को नहीं मानते, उनके लिए यह आज भी ऐसा ही बना हुआ है। इस आदेश का यह तकाजा है कि

हममें से प्रत्येक व्यक्ति को धर्म-ग्रन्थों में व्यक्त और हमारी बुद्धि द्वारा अनुमोदित परमात्मा के नियमानुसार—अपना उदर-पोषण अपने निज के परिश्रम से ही करना चाहिए। यह स्वीकारात्मक नियम था, और जब तक सत्य की शिक्षा द्वारा मनुष्य-जीवन का तात्पर्य मनुष्य को ज्ञात होता रहेगा, तबतक यह नियम स्वीकारात्मक ही रहेगा।

परन्तु ईसामसीह ने मनुष्य-जीवन का जो उच्च आदर्श हमारे सामने रखा है, उसके अनुसार रोटी के लिए मज़दूरी करने का सिद्धान्त पहले के समान अक्षुण्ण रहते हुए भी ईसामसीह की मनुष्य-सेवा सम्बन्धी एक मात्र स्वीकारात्मक शिक्षा के भली भांति अनुकूल बैठता है। इसलिए इस नियम को अब हमें स्वीकारात्मक नहीं; प्रत्युत् नकारात्मक ही समझना चाहिए। ईसाई दृष्टिकोण से यह नियम हमारा ध्यान एक प्राचीन माया-जाल की ओर आकर्षित करता है; और मनुष्यों को बतलाता है कि जीवन के सच्चे मार्ग से इधर-उधर न भटकने और उस पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ रहने के लिए उन्हें किन-किन बातों से बचते रहना चाहिए।

जो लोग सत्य की इस शिक्षा को नहीं मानते, तथा जो लोग पुरानी बाइबिल के अनुयायी हैं, उनके लिए इस नियम का अर्थ निम्नलिखित है:—"अपनी रोटी अपने निजके हाथों से परिश्रम करके उपार्जन करो।" लेकिन ईसाई धर्म के अनुयायी के लिए इस नियम का तात्पर्य नकारात्मक है। उसको यह नियम कहता है कि, "जबतक तुम दूसरों के परिश्रम से उपार्जित पदार्थों का उपभोग करते हो और अपने हाथों से अपनी आजीविका पैदा नहीं करते, तबतक तुम यह न समझो कि तुम दूसरों की सेवा कर सकते हो।"

यह नियम प्रत्येक ईसाई का ध्यान उस अत्यन्त प्राचीन और भयंकर प्रलोभन की ओर आकर्षित करता है, जिससे मनुष्य-जाति पीड़ित है। बोण्डारीफ़ की शिक्षा का उद्देश्य इसी प्रलोभन (जिसका परिणाम अत्यन्त

भयंकर हैं और जो इतना प्राचीन है कि उसके बारे में यह कहना भी हमारे लिए कठिन है कि यह मनुष्य का स्वाभाविक संस्कार नहीं, बल्कि एक भ्रम-मात्र है) का विरोध करना और इस प्रलोभन एवम् उसके परिणामों को जनता के सामने असली रूप में रख देना है। क्या पुरानी बाइबिल पर विश्वास रखने वाले, क्या नई बाइबिल को मानने वाले और क्या बाइबिल को न मानने और अपनी विवेक-शक्ति पर भरोसा रखने वाले—इन सब लोगों को समान रूप से बोण्डारीफ़ की शिक्षा के अनुसार आचरण करना चाहिए।

मैं इस सिद्धान्त की सच्चाई को प्रमाणित करने और इसके खिलाफ़ पेश की जाने वाली उन तमाम पेचीदा और तरह-तरह की दलीलों को झूठा साबित करने के लिए, जो हम सब की ज़बानों पर हर समय तैय्यार रहती हैं, बहुत-कुछ लिख सकता था और मैंने बहुत-कुछ लिखा भी होता। पर सच बात तो यह है कि हम लोग इस बातको जानते हैं कि सब दोष हमारा है, और इसलिए हम लोग अपनी ग़लती का औचित्य सिद्ध करने को सर्वदा तत्पर रहते हैं। इसलिए मैं इस सम्बन्ध में कितना ही विस्तारपूर्वक और कितनी ही उत्कृष्ट भाषा में अपने विचार प्रकट क्यों न करूं और मेरे विचार कितने ही तर्क-सम्मत क्यों न हों, फिर भी मैं अपने पाठकों का समाधान तबतक नहीं कर सकूंगा, जबतक उनकी बुद्धि मेरी बुद्धि के विरुद्ध अड़ी रहेगी और उनका हृदय वज्र की भांति निष्ठुर और बर्फ की तरह ठण्डा बना रहेगा।

और इसलिए मैं अपने पाठकों से अनुरोध करता हूं कि थोड़ी देर के लिए वे अपनी बुद्धि की उड़ानें भरना बन्द करदें। उन्हें न तो मेरे साथ वाद-विवाद करने की जरूरत है और न किसी बात को साबित करने की ही। मेरा अनुरोध उनसे यह है कि वे केवल अपने हृदय को टटोलें और उसीसे अपने सवालों और दलालों का जवाब मांगें। आप चाहे कोई भी क्यों न हों, कितने ही कुशाग्र-बुद्धि क्यों न हों, अपने आस-पास

वालों के प्रति कितने ही दयावान क्यों न हों, आप कितने ही ऊंचे पद प्रतिष्ठा वाले क्यों न हों, फिर भी मैं आपसे पूछता हूं भोजन करते समय और राजनैतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक आयुर्वेदिक अथवा शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं की मीमांसा करते समय यदि आप अपने दर्वाजे पर किसी नंगे, भूखे, ठंड से ठिठुरते हुये, बीमार और कष्ट पीड़ित मनुष्य को देखें और उसका करुण-क्रन्दन सुनें, तो क्या आप चुपचाप बैठे रह सकते हैं—क्या आपके दिल में जरा भी वेदना, जरा भी सहानुभूति का भाव जागृत नहीं होगा ? नहीं, ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता। तो फिर ऐसे कष्टपीड़ित लोग तो हर वक्त हमारे आस-पास मंडराते रहते हैं। अगर हमारे दर्वाजे पर न सही, तो हमारे घर से दस कदम अथवा दस मील के फासले पर अवश्य ऐसे व्यक्ति मिल जावेंगे। वहां पर वे लोग मौजूद हैं और आप इस बात को जानते हैं।

और आपको ऐसी शान्ति, ऐसा आनन्द कहां मिलेगा, जो उपरोक्त असलियत के ज्ञान से विषाक्त नहीं हो चुका है ? आप उनको अपने दर्वाजे पर न देखने पावें, इसलिए आप सींखचे लगाकर या अपनी निष्ठुरता से उन्हें अपने से दूर रखते हैं, या खुद ऐसी जगह चले जाते हैं, जहां पर वे दिखलाई न पड़ें। फिर भी वे सर्वत्र विद्यमान हैं।

और अगर आपको कोई ऐसा स्थान मिल जावे, जहां आप उनको न देख सकें, तो भी आप सत्य और परमात्मा से बच कर कहीं नहीं जा सकते। तब फिर प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अवस्था में करना क्या चाहिए ?

आपको क्या करना चाहिए—इस बात को आप जानते हैं और सत्य की शिक्षा से भी आपको इस बात का पता लग जायगा।

ऊपर से उतर कर नीचे आजाओ—तुमको यह जो गढ़ा दिखाई पड़ता है, वह दरअसल ऊपर की सतह है—और जो लोग भूखों के लिए भोजन पैदा करते और नंगों के लिए वस्त्र तैयार करते हैं उनके

साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर खड़े हो जाओ। मन में जरा भी झिझक अथवा भय न लाओ, ऐसा करने से तुम्हारा जरा भी नुकसान नहीं होगा, बल्कि सब तरह से तुम्हारा लाभ ही होगा। सर्व-साधारण की श्रेणी में अपना नाम लिखा लो और अपने नाजुक, कमजोर एवम् अन-भ्यस्त हाथों से भूखों को भोजन और नंगों को कपड़ा देने वाले प्राथ-मिक कार्य में लग जाओ, रोटी के लिए श्रम करो, प्रकृति के साथ संघर्ष करो, तब अपने जीवन में पहली बार तुमको इस बात का अनुभव होगा कि तुम दृढ़ भित्ति पर खड़े हो। साथ ही तुमको यह भी अनुभव होगा कि तुम्हारे अन्दर सच्ची शांति है, तुम स्वतन्त्र हो, स्वावलम्बी हो, तुमने दृढ़तापूर्वक पैर जमा रक्खे हैं और तुम अपनी यात्रा के अन्तिम सिरे तक पहुंच चुके हो। इसके अतिरिक्त तुम उस परिपूर्ण, निर्मल और निर्विकल्प, आनन्द का भी उपभोग करोगे, जो और कहीं नहीं पाया जाता, और जिसकी रक्षा न तो अपने घरों में दरवाजे बना देने से होती है और न खिड़कियों तथा बैठकों में पर्दे डाल देने से ही।

तब तुम्हें ऐसे-ऐसे नूतन आनन्द प्राप्त होंगे, जिन्हें तुमने पहले कभी अनुभव नहीं किया होगा। तब तुम अपने जीवन में प्रथम बार उन मज-बूत और सीधे-सादे लोगों—अपने मानव बन्धुओं—से परिचय प्राप्त करोगे, जो अब तक दूर रह कर तुम्हारा भरण-पोषण करते रहे हैं, और उस समय तुम्हारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहेगा, जब तुम उनके अन्दर ऐसे-ऐसे सद्गुणों को देखोगे, जिनको तुमने पहले कभी नहीं देखा था—तुम्हारे साथ वे इतनी विनय, इतनी शिष्टता, इतनी दयालुता प्रकट करेंगे कि तुम्हें सचमुच ताज्जुब होगा, तुम अपने आपको उसके अयोग्य समझोगे।

उन्हीं पर जीवन बसर करने और जीवन भर उनसे घृणा करने के बाद अन्त में अपने-आपको पहचान लेने और अपने अनभ्यस्त हाथों से उनकी मदद करने की कोशिश करने के बदले वे तुम्हारे प्रति अत्यन्त दयार्द्रता, कृतज्ञता और आदर प्रकट करेंगे। जहां तुमको तिरस्कार और

डांट–फटकार की आशा थी, वहां तुम्हें उसके सर्वथा विपरीत अनुभव होगा।

तब तुम देखोगे कि जिस चीज को तुम एक द्वीप समझते थे और जिसके बारे में तुम्हारा यह ख्याल था कि समुद्र के तूफान में डूबने से बचकर तुमने उस पर शरण पाई है, वह एक दलदल मात्र है जिसम तुम अधिकाधिक गहरे फंसते जा रहे थे। इसके विपरीत दूसरी ओर तुम देखोगे कि जिस चीज को समुद्र समझ कर तुम डरते थे, वह एक सूखा भूभाग है और उस पर तुम दृढ़ता और आनन्दपूर्वक निश्चिन्त हो कर घूम फिर सकते हो। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई परिणाम निकल भी नहीं सकता, क्योंकि तब तुम असत्य और भ्रम–जाल (जिस में तुमको अपनी निज की इच्छा से नहीं, बल्कि दूसरों के कहने में आ कर फंस गये थे) को तोड़ कर सत्य का आश्रय ले चुके होगे, और ईश्वर के उद्देश्य का तिरस्कार करने के स्थान पर उसका पूर्णतया पालन करने में जुट पड़े होगे।